मंगलाचरण

अरिहंत को नमन, अरिहंत को नमन
सिद्ध प्रभु को नमन, सिद्ध प्रभु को नमन
आचार्य को नमन, आचार्य को नमन
उपाध्याय को नमन, उपाध्याय को नमन
सर्व साधु को नमन, सर्व साधु को नमन
ये हैं मेरे पंच गुरु इनको सदा नमन
इनके नमन से हो मुक्तिपथ पे गमन
इनकी ही भक्ति में हों मेरे मन वच तन।
अरिहंत जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय।
साधुजन जय जय, जिनधर्म जय जय।।
अरिहंत मंगल, सिद्ध प्रभु मंगल।
साधुजन मंगल जिनधर्म मंगल॥
अरिहंत उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम।
साधुजन उत्तम, जिनधर्म उत्तम॥
अरिहंत शरणा, सिद्ध प्रभु शरणा।
साधुजन शरणा जिनधर्म शरणा॥

चार शरण अघ हरण जगत में, और न शरणा हितकारी।
जो जन ग्रहण करें वे होते, अजर-अमर-पद के धारी॥
नमस्कार श्री अरिहंतों को, नमस्कार श्री सिद्धों को।
आचार्यों को उपाध्यायों को, सर्व लोक के संतों को॥

ॐ शांति

संकलन
पूज्य 105 क्षुल्लक श्री ध्यानसागर जी महाराज

मानतुंग-भारती
क्षुल्लक ध्यानसागरजी

मानतुंग-भारती

क्षुल्लक ध्यानसागरजी

मानतुंग - भारती

भक्तामर स्तोत्र

मूल : पूज्य श्री मानतुंगाचार्य विरचित

★★★

भयहर संथवो

मूल : आचार्य श्री मानतुङ्ग स्वामि विरचित

★★★

हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ एवं अन्तर्ध्वनि

आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनिराज के परम शिष्य

पूज्य श्री १०५ क्षु. ध्यानसागरजी

मानतुंग - भारती

क्षुल्लक ध्यानसागर

❖ प्रथम आवृत्ति - 2000
अक्टूबर 2003

❖ द्वितीय आवृत्ति - 2000
मई 2005

❖ मूल्य- सदुपयोग (भक्ति, मनन, चिंतन)

❖ अशुद्धि शोधक
जिनेन्द्र कुमार जैन,
पद्मनाभ नगर, भोपाल

❖ प्रकाशक एवं पुस्तक प्राप्ति स्थान-
(1) सुनील जैन
सुनील पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स, ललवानी प्रेस रोड, भोपाल
फोन- 2543476, 2666298, 9827016867

(2) सपन सराफ
सराफ इन्टरप्राइजेज, हमीदिया रोड, भोपाल
फोन- 2542346, 2745990

(3) स्वतन्त्र बड़कुल
सिंघई हैण्डलूम, चौक बाजार, भोपाल

❖ मुद्रक- विकास गोधा,
विकास ऑफसेट,
204, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल
फोन - 5275658, 9425005624

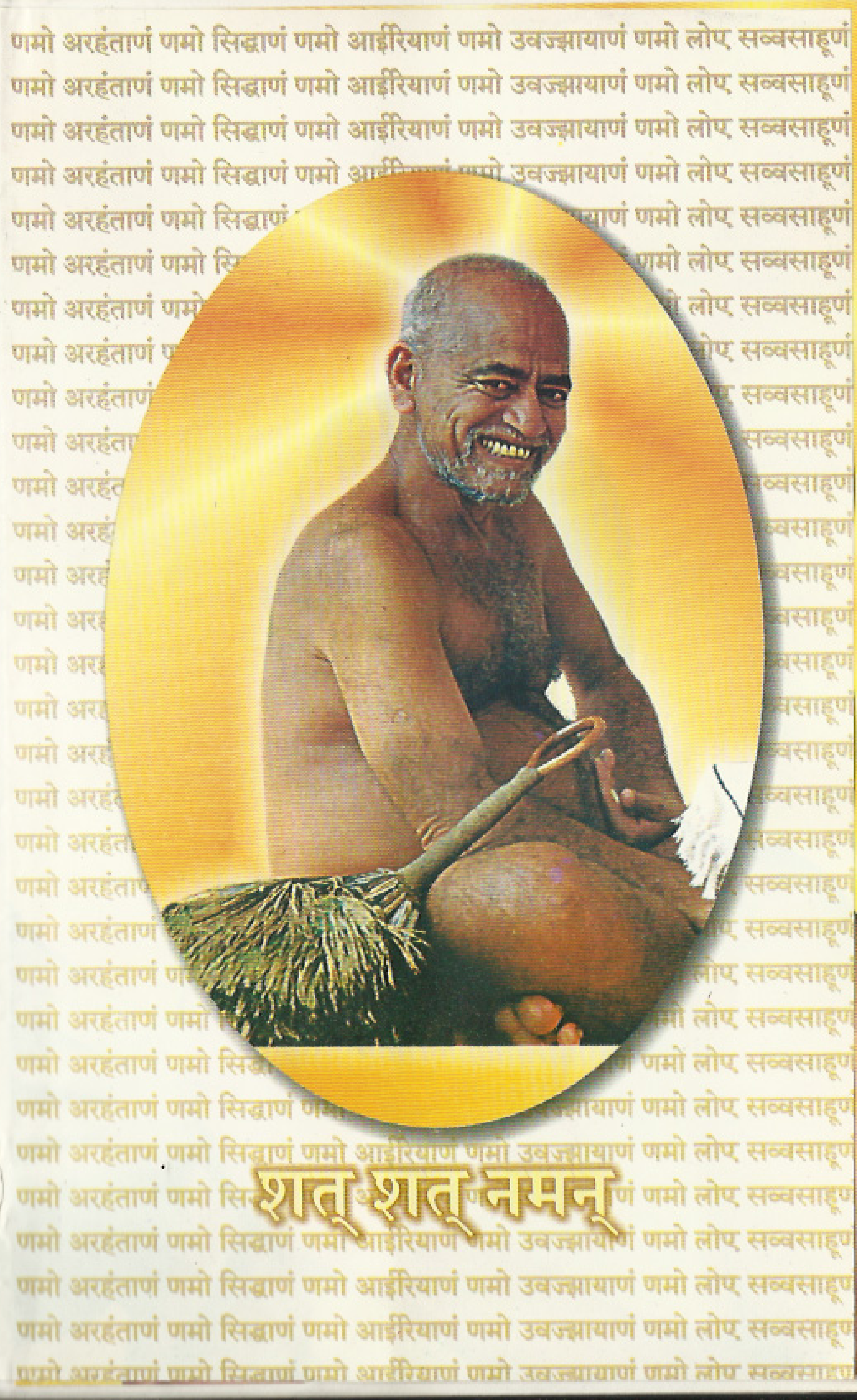

Param Pujya Kshullak Shri Dhyaansagar Ji Maharaj ka Photo

प्रकाशकीय

अध्यात्म-साधना के सूर्य परम पूज्य आचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज जब भोपाल की धरती को अपनी उज्ज्वल धवल किरणों से पवित्र करके भोपाल से मंगल विहार करके जा रहे थे ठीक उसी समय उन्हीं के परम प्रभावक शिष्य पूज्य क्षुल्लक 105 श्री ध्यानसागर जी महाराज ने भोपाल की धरती पर प्रवेश किया।

उस समय वह लोकविश्रुत कथा चरितार्थ हुई कि ''अस्ताचल की ओर जाते हुये सूर्य ने अंधेरे में घिरते जनमानस की ओर करुणा से देखा। तभी एक लघुकाय दीप ने विनम्र स्वर में निवेदन किया-

''हे प्रभु ! मैं आपका ही अंशावतार हूँ, अत: आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि आपके पुन: पधारने तक में मोहान्धकार की निविड़ निशा में आपकी ही भांति बिना किसी भेद-भाव के भव्याभव्य सभी को सन्मार्ग दिखाने का प्रयास करूंगा।''

विगत दस वर्षों से भोपाल को दि. जैन साधु-संघों की विहार-भूमि बनने का सौभाग्य मिलता रहा है। अप्रैल 2002 के अन्तिम सप्ताह में आचार्यश्री के विहार के पश्चात् भोपाल के सौभाग्य से पूज्य क्षुल्लकजी का आगमन हुआ। भोपाल में क्षुल्लकजी का तीसरा प्रवास होने के कारण भारी संख्या में उनके शिष्य मण्डली और अध्यात्म-रसिक जन, जो पूर्व से ही उनके ज्ञान-गर्भीय, आकर्षक व्यक्तित्व और सरल सुबोध प्रवचनशैली से प्रभावित थे, उत्सुक और आशान्वित थे कि बड़ी सीमा तक उनके अमृत वचनों का लाभ हमें चातुर्मास तक मिलेगा ।

ग्रीष्मकालीन वाचना के लिये योगपूर्वक आत्मीय निवेदन करने पर पूज्यश्री ने ''भक्तामर जी'' पर विशद व्याख्यान माला के रूप में हमें उपकृत करना स्वीकार कर लिया। जैनजगत में अनादिनिधन श्री णमोकार महामंत्र के पश्चात् मंत्रशक्ति से परिपूर्ण भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय अध्यात्म-साधना का अमोघ उपाय माना जाता है।

पूज्य श्री क्षुल्लक जी द्वारा आचार्य मानतुंग कृत संस्कृत भक्तामर स्तोत्र के सभी 48 काव्यों की विशद् व्याख्या, व्याकरणसम्मत शुद्ध उच्चारण, काव्यों की मंत्रशक्ति और

उनके ध्वन्यर्थ को अत्यंत सरल और उदाहरणों सहित रोचक ढंग से समझाया गया। पूज्य क्षुल्लक जी द्वारा किये गये भक्तामर जी के हिन्दी पद्यानुवाद और उसके सुमधुर कण्ठ से पारयण ने इस स्वर्णिम अवसर में सुगन्धि भरने का कार्य किया। पूज्य श्री के चुम्बकीय व्यक्तित्व के आकर्षण से सम्मोहित जनसमूह को पता ही नहीं चला कि 5 मई से श्रुत पंचमी 15 जून तक के 40 दिन कब और कैसे निकल गये।

अमर कृति ''भक्तामर स्तोत्र'' के रचनाकार आचार्य मानतुंग स्वामी की ही एक अन्य रचना ''नमिऊण स्तोत्र'' जो अपेक्षाकृत कम प्रचारित-प्रसारित/अनुपलब्ध कृति है, को भी पूज्य क्षुल्लक जी के सरल सुबोध पद्यानुवाद सहित इस संकलन ''मानतुंग भारती'' में समाहित करके कृति का नाम सार्थक किया गया है। ''नमिऊण स्तोत्र'' भगवान चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्राकृतभाषा में स्तुति है। इस कृति का हिन्दी पद्य में पठन-पाठन सुलभ हो जाने से यह सभी भक्तजनों के लिये कल्याणकारी सिद्ध होगी, ऐसी हमारी मान्यता और कामना है।

''मानतुंग भारती'' में उनके दोनों पद्यानुवादों को अपने पास संजोने सहलाने की अदम्य इच्छा से हमनें उन्हें पुस्तकरूप में मुद्रित/प्रकाशित करने की आज्ञा-अनुमति के लिये निवेदन किया। पूज्य श्री ने वात्सल्यभाव से हमें अनुमति देकर हम पर अपूर्व उपकार किया।

शीघ्र से शीघ्र ही यह पुस्तक लोगों तक पहुंच सके इस दायित्वपूर्ण कार्य में समाज के इन सभी महानुभावों ने अपने सद्द्रव्य का सदुपयोग किया।

शीघ्र मुद्रण तथा रुचिकर डिजाइनिंग के लिये मुद्रक ने हमारी सहायता की। विशेषकर ''मंत्र'' और स्तुति-काव्य में एक भी अक्षर या मात्रा कम या अधिक हो तो उसका वांछित परिणाम नहीं मिलता, फिर ''भक्तामर जी'' तो मंत्रशक्ति से परिपूर्ण स्तुति काव्य है। अतः उसे त्रुटिहीन बनाने के लिये सार्थक श्रम किया गया तथा समाज के सभी लोगों ने सार्थक सहयोग दिया।

समाज के उन सभी सज्जनों के हम हृदय से आभारी हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकाशन में हमें सक्रिय सहयोग दिया। अंत में हम पूज्य क्षुल्लक जी के अहेतुकी कृपा के लिये हृदय से उपकृत अनुभव करते हुए उनके श्रीचरणों में त्रियोगपूर्वक इच्छामि निवेदन करते हैं।

इस कार्य में यत्किंचित् सफलता मिली हो तो उसका श्रेय गुरुकृपा को है और त्रुटियां सभी हमारी अपनी हैं। हम खुले हृदय से स्वीकार करते हैं। सुधीजनों के संशोधनों और सुझावों को हम प्रसन्नतापूर्वक स्थान देंगे।

गुरुचरण सेवक
सकल दिगम्बर जैन समाज, भोपाल

पूर्विका

प्रशस्त परिणामों की अभिव्यक्ति का नाम ही भक्ति है, अथवा यह कहें कि पूज्य-पुरुषों के गुणों के प्रति बहुमान का होना भक्ति है। भक्ति ही एक ऐसा माध्यम है जो भक्त और भगवान के बीच संबंधों में निकटता स्थापित करती है। जब भक्त भक्तिरस में निमग्न होता है तब वह द्वैत से अद्वैत की भावना में पहुँच जाता है। परमात्मा की उपासना करने वाले जैनाचार्यों एवं विद्वज्जनों ने भक्तामर स्तोत्र, कल्याण मंदिर स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, विषापहार स्तोत्र, महावीराष्टक स्तोत्र आदि संस्कृत भक्ति-काव्यों का सृजन किया है, जो हमारी भावनाओं को निर्मल बनाते हैं।

इसी संदर्भ में क्षुल्लकजी ने इस पुस्तक में कुछ पद्यानुवाद लिखे हैं, जो कि बहुत सुन्दर, सरल और हृदयग्राह्य हैं। जब वे भक्तिरस में डूबकर अपने मधुर कण्ठ से गद्‌गद स्वर में पाठ करते हैं, तब वह पाठ बरबस ही श्रोताओं के मन को मोह लेता है एवम् पाठक के मन में वैराग्य-भावनाओं को जन्म दिए बिना नहीं रहता। क्षुल्लकजी के ऐसे प्रशस्त कार्य के लिए साधुवाद.....

ऐलक उदारसागरजी

मनोगत

सामान्य गृहस्थ की जीवनचर्या कुछ ऐसी होती है कि वह अपने सांसारिक प्रपंचों में ही अत्यधिक उलझा रहता है। इस कारण उनकी प्रवृत्ति निरंतर सदोष बनी रहती है। शास्त्रों में साधुओं के अलावा गृहस्थों के लिए भी कृतिकर्म करने का उपदेश किया गया है।

जिस अक्षरोच्चारणरूप वाचनिक क्रिया के, परिणामों की विशुद्धिरूप मानसिक क्रिया के एवं नमस्कारादि स्वरूप कायिक क्रिया के करने से ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्मों का छेद होता है उसे कृतिकर्म कहा गया है। इसमें पंच-परमेष्ठी पूजा एवं स्तुति का समावेश है। यह कर्मों की निर्जरा का कारण है एवं उत्कृष्ट पुण्यसंचय का हेतु भी है और विनयगुण का मूल भी है।

कृतिकर्म का मुख्य हेतु आत्मशुद्धि है। इसीलिए भक्ति करते समय पंच परमेष्ठियों का ही आधार लिया जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि भक्ति के कार्य, बिना राग के नहीं होते हैं, और राग संसार का कारण है, अत: इन्हें आत्मशुद्धि में प्रयोजन कैसे माना जाय? इस पर हमारी मान्यता यह है कि जब तक सराग अवस्था है, तब तक जीवों के राग की उत्पत्ति होती ही है। यदि यह लौकिक प्रयोजन के लिए है, तो इससे संसार भ्रमण होगा। किन्तु अरहन्तादि स्वयं राग द्वेष से रहित होते हैं। अत: लौकिक प्रयोजन से इनकी पूजा-भक्ति नहीं की जा सकती। इसीलिए इनकी भक्ति आदि के निमित्त से होनेवाला राग मोक्षमार्ग का प्रयोजक होने से प्रशस्त माना गया है।

मूलाचार में कहा गया है कि जिनेन्द्रदेव की भक्ति करने से पूर्व-संचित कर्मों का क्षय होता है। आचार्यों के प्रसाद से विद्या और मंत्र सिद्ध होते हैं। ये संसार तारने के लिए नौकास्वरूप हैं। अरहंत, अहिंसा धर्म, द्वादशांगवाणी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनके अभिमुख होकर जो विनय और भक्ति करते हैं, उन्हें सब अर्थों की सिद्धि होती है।

अब भक्ति कैसी हो, इसके विषय में उपरोक्त कथन को थोड़ा-सा विराम देते हुये यहां एक शास्त्रोक्त उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा। दिगम्बर जैन परम्परा में षट्खंडागम एक प्रमाणभूत परम-आगम ग्रंथ है। इसी ग्रंथ के लिपिबद्ध होने से जो मैं कहना चाहता हूँ वह घटना संबंध रखती है।

गिरनार पर्वत की चंद्रगुफा में स्थित आ. धरसेनजी अष्टांग-महा-निमित्त के ज्ञाता थे। उन्होंने उत्तरोत्तर क्षीण होते हुये श्रुत के प्रवाह को देखकर जाना कि कालांतर में इस परम्परा का सूर्य अस्त होनेवाला है। इस भय से उन्होंने दक्षिणापथ के आचार्यों के पास एक लेख भेजा। इस लेख में निहित श्री धरसेनाचार्यजी के अभिप्राय को समझकर उन आचार्यों ने ऐसे दो साधुओं को आ. श्री धरसेन के पास भेजा जो ग्रहण-धारण में समर्थ, विनीत, शीलगुण सम्पन्न, देश कुल जाति से शुद्ध और समस्त कलाओं में पारंगत थे। ये दोनों साधु विधिवत् विहार करते हुये आचार्य श्री धरसेन के निकट गिरनार पहुँचे। दोनों साधुओं ने आ. श्री धरसेन के पास जाकर निवेदन किया, ''भगवन् ! अमुक कार्य से हम आपके चरणों में आये हैं।'' आचार्य श्री ने ''सुष्ठु भद्र'' कहकर उन्हें आश्वस्त किया। यद्यपि पूर्व में ही एक स्वप्न देखने से उनके विषय में विश्वास होते हुये भी, यथेच्छ प्रवृत्ति करने वालों को ही विद्यादान संसार को बढ़ाने वाला होता है, यह सोचकर उनकी परीक्षा लेना उचित समझा।

इसके लिये उन्होंने उनके लिए दो विद्यायें, जिनमें एक अधिक अक्षरवाली और दूसरी हीन अक्षरवाली थी, दी और कहा कि इन्हें षष्ठोपवास के साथ सिद्ध करो। तदनुसार विद्याओं के सिद्ध होने पर अलग-अलग दो विद्यादेवियाँ सिद्ध हुईं, जिनमें एक बड़े दाँतों वाली एवं एक कानी थी।

इस पर दोनों ने विचार किया कि देवताओं का स्वरूप तो ऐसा नहीं होना चाहिये। यह विचार करते हुये मंत्र एवं व्याकरण शास्त्र में कुशल उन दोनों ने हीन अक्षरवाली विद्या में छूटे हुये अक्षर को जोड़कर और अधिक अक्षर वाली पंक्ति से उस अधिक अक्षर को निकालकर पुन: जाप किया। तब उन्होंने स्वाभाविक रूप में प्रकट विद्याओं को देखा।

इस घटना को विनयपूर्वक उन्होंने आचार्य श्री धरसेन मुनिराज से निवेदित किया। इस पर आचार्य श्री ने अत्यंत संतोष को प्राप्त कर उन्हें उचित तिथि, नक्षत्र एवं वार में ग्रन्थ को पढ़ाना आरंभ कर दिया। कालांतर में ये ही दोनों शिष्य भूतबलि एवं पुष्पदंत के नाम से जाने गये।

अपनी प्रस्तावना में इस घटना का उल्लेख एक विशेष प्रयोजन को लेकर प्रस्तुत है। लिपिज्ञान तो मानवजाति को भगवान आदिनाथ के समय से ही था, किन्तु धार्मिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान को श्रुतपरंपरा के लोप होने के भय से लिपिबद्ध करने का यह इस युग का पहला अवसर था। इस अवसर पर आचार्यों ने उपरोक्त घटना का शास्त्र में वर्णन करना अत्यंत जरूरी समझा। इसमें लिपिज्ञान का सारा मर्म समाविष्ट है। इस मर्म को यदि हम नहीं समझ सके तो हमारा लिखना और आपका पढ़ना दोनों ही व्यर्थ होगा।

इस पुस्तक में ''धर्म ही शरण'' में **पू.क्षु. ध्यानसागरजी** ने इस विषय में कुछ दिशानिर्देश दिये हैं। इस विषय में उनका अध्ययन बहुत गहरा है और प्रस्तुति प्रशंसा-

योग्य है। श्रावकों से निवेदन है कि ''धर्म ही शरण'' इसका गौर से अध्ययन करें, समझें और फिर पठन करें। इस चातुर्मास में महाराजजी ने हमें सतत् चार माह अथक परिश्रम लेते हुये व्याकरण, पठन, उच्चारण संबंधी नियमों से अवगत कराया और सही दिशा में भक्तिमार्ग दिखाया है। वे यथार्थ में एक अधिकारी व्यक्ति हैं। उन पर उनके दीक्षागुरु प.पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की गहरी छाप है। उनकी साधना एवं इस समाज के प्रति उनका समर्पण एक अनन्य उदाहरण है। उनका हम अल्पसा भी अनुसरण करें तो निश्चित ही हमें अपने ध्येय में सफलता प्राप्त होगी, यह तय है। हम उनके सर्वदा ऋणी हैं और रहेंगे।

भवदीय

सुभाष कपूरचंद जैन

धर्म ही शरण

भौतिक चकाचौंध से प्रभावित आधुनिक मानव संकटमुक्त नहीं दीख पड़ता। उसका हृदय आतंकित और चित्त अशांत है। ऊपरी जीवन में समृद्धि होने पर भी भीतर एक खालीपन प्रतीत हो रहा है। स्मृति और आशा की खींचातानी में मन पल भर के लिए भी निस्तरंग नहीं बन रहा। इन्द्रिय-सुखों की विपुलता एवं परिग्रह का अधिकाधिक संचयन पराधीनता को बढ़ाने में ही सहायक हुआ है। समूचा जीवन प्राय: परिस्थितियों से जूझते हुए व्यतीत हो रहा है। जटिलता के साथ चिंताएँ भी सतत् वृद्धि पा रही हैं। अन्तस् त्राहि-त्राहि कर रहा है और काया अल्सर, रक्तचाप आदि व्याधियों से पीड़ित हो रही है। चैन की श्वास लेना भी अब दुष्कर लग रहा है। संघर्षों से त्रस्त एवं तनावों से ग्रस्त मन अशांति की जड़ को पकड़ नहीं पा रहा है।

समस्या अत्यंत विकट है; किन्तु जब वैज्ञानिक भी समाधान देने में पूर्णत: सफल नहीं हो पाते, तब निराशा के बादल मँडराने लगते हैं। मनुष्य अन्ततः हताश हो उठता है और मनोमंजन से अपरिचित होने के कारण मनोरंजन के नये-नये आविष्कार करता है। जवानी प्राय: व्यसनों में और बुढ़ापा डॉक्टर की फीस चुकाते हुए व्यतीत हो जाते हैं। बचपन में कुसंगति से हानि उठानी पड़ती है। सिनेमा और टी.वी. के दुष्परिणामों से अपरिचित कौन है? इस प्रकार सर्वत्र असंतुलन ही असंतुलन छाया हुआ है। आज पूर्ण नीरोग कौन है? प्राय: सभी मनुष्य मानसिक तनाव से होनेवाली किसी न किसी व्याधि से ग्रस्त हैं। चमकदमक केवल ऊपरी है, अंदर से मनुष्य खोखला हो चुका है। फिर भी आज विश्व, स्पर्धा के कारण व्यग्र हुआ जा रहा है।

चित्त को भाररहित बनाने के लिए विभिन्न धर्म यथासंभव मार्गदर्शन देते हैं। सनातन धर्म ने श्रद्धा, इस्लाम ने भाईचारा, सिक्खमत ने गुरुभक्ति, ईसाई धर्म ने सेवा-भाव, यहूदी धर्म ने सत्प्रेम, बौद्ध-धर्म ने करुणा, पारसी-धर्म ने पवित्रता, अनीश्वरवाद ने आत्म-निर्भरता, आर्य समाज ने विवेक और जैन-धर्म ने अहिंसा के साथ इन सबका प्रशस्त-मार्ग दर्शाया है। कर्तव्यनिष्ठा, नि:स्वार्थ सेवा और परोपकार वास्तव में प्रशंसनीय हैं। दूसरों के शोषण से अपना पोषण करना मानवता के विरुद्ध है। सभी धर्म मानव को बुराइयों से दूर हटाकर सद्भावनापूर्ण जीवन की ओर प्रेरित करते हैं। लेकिन आज इन्हें सुनकर अपनाने का समय किसके पास है? दिन प्रतिदिन व्यस्तता बढ़ रही है। कृत्रिमता के इस युग में सादगी का दर्शन कठिन हो गया है। विचार करने पर यही समझ में आता है कि मनुष्य का अप्राकृतिक जीवन ही अशांति का एक प्रमुख कारण है।

इस शरण-विहीन स्वार्थपूर्ण संसार में मनुष्य प्राय: किसी अदृश्य शक्ति पर आशाभरी दृष्टि डालता है और क्लेश-मुक्ति के लिए उसकी उपासना भी करता है। भारत के विभिन्न संप्रदाय इसी परंपरा का अनुकरण करते हैं। दुर्भाग्यवश अधिकांश देशवासी धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि को परस्पर सर्वथा निरपेक्ष समझ अंधश्रद्धा के चक्र में उलझकर चमत्कार को ही धर्म मानते हैं।

वे रूढ़ियों को ही सन्मार्ग मान बैठते हैं तथा वास्तविकता से सदैव अछूते रहते हैं। निश्चिन्त रहना, जीने की कला है। और उसे सिखलाने वाला है धर्म। पर वह हृदय में तब तक प्रविष्ट नहीं होता जब तक कोई हठाग्रह विद्यमान रहता है। सबके मन एकसे नहीं हो सकते, लेकिन वैचारिक मतभेदों में भी पारस्परिक सौहार्द नितांत आवश्यक है। धर्म व्यवहारिक-प्रेम को जन्म देता है, कटुता को नहीं। विशाल हृदय ही धर्म-जैसी महान् वस्तु का निवास-स्थल हो सकता है।

भक्त, भक्ति और भगवान

अपने-अपने इष्ट की उपासना कौन नहीं करता? जिसे कैवल्य का आनंद इष्ट है, वह वीतराग-सर्वज्ञ प्रभु की ओर स्वत: आकृष्ट होता है। आराध्य के गुणों में जो नि:स्वार्थ प्रेम उमड़ता है, वही भक्ति है। यद्यपि प्रभु-भक्ति में उम्र या जाति का प्रतिबंध नहीं है, पर भक्त बिरले होते हैं। प्रचुरता, श्रेष्ठता का मापदंड नहीं हो सकती। इष्ट की आकांक्षा एवं अनिष्ट की आशंका से भजन-पूजन करनेवालों की सर्वत्र भरमार है। पर वास्तविक भक्ति मांगना नहीं, अर्पण करना जानती है। नेत्रों में अश्रुजल, रोमांचित शरीर, गद्गद्-कंठ और भाव-विभोर हृदय समर्पण के प्रमाण हैं। भक्ति-रस के आगे भौतिक-सुख नीरस लगने लगता है। संपत्ति के समय भक्त धर्म को नहीं भूलता, अत: गर्व से नहीं फूलता। विपत्ति में सोचता है कि घबड़ाने की क्या आवश्यकता है? यह तो प्रसन्नता का अवसर है जो पुराना ऋण चुक रहा है।

सच्चा धर्मात्मा अंध-भक्ति को नहीं अपनाता। **यह अटल सत्य है कि कोई कार्य अकारण नहीं होता। संसार की प्रत्येक घटना भीतरी एवं बाहरी कारणों के सुमेल से निष्पन्न होती है। कारण-विषयक भ्रम का निवारण ही विवेक की कसौटी है। भक्ति के अतिशय भी कार्य-कारण-व्यवस्था में ही गर्भित हो जाते हैं।** जब भक्ति वेग पकड़ती है, तब आत्मशक्ति केन्द्रित होती है और सुषुप्त भाग्य जाग उठता है। ऐसी स्थिति में देवता भी अप्रत्याशित सहयोग प्रदान करते हैं। संकट भाग-खड़े होते हैं। दैवीय-चमत्कार से प्रभावित होकर, प्रभुभक्ति छोड़ अन्य देवी-देवताओं को रिझाने का उपक्रम करना अविवेक की पराकाष्ठा है। भक्त भगवान् को ही नमस्कार करता है, चमत्कार को नहीं।

जिसे प्रभु के गुणों के प्रति आदर प्रकट हुआ है, वह लघुता की प्रतिमूर्ति होता है, अपनी अवस्था को नगण्य मानता है। विनय के बिना भक्ति कैसी? अभिमान व भक्ति में ३६ का आंकड़ा है। वास्तव में लघुता ही प्रभुत्व का द्वार है।

'लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।'

भक्त तो प्रभु-चरणों की गज-रेखा में विद्यमान रज-कण को धन्य समझता है। मानव का मान-क्षरण प्रभु-शरण द्वारा अनायास हो जाता है। भक्त-हृदय बोल पड़ता है, ''हे प्रभु ! मैं कुछ बनना नहीं, अपितु मिटना चाहता हूँ।'' ऐसा भक्त ही निष्काम-भक्ति का अधिकारी होता है। जिसे मोक्ष की कामना भी खटकती हो, उसे लौकिक कामनाएँ किस प्रकार प्रभावित कर सकती हैं? आचार्य श्री विद्यासागर गुरु महाराज के निम्न उद्गार अवलोकनीय हैं-

ना तो सुर-सुख चाहता, शिव-सुख की ना चाह।
तव थुति सरवर में सदा, होवे मम अवगाह॥

कभी-कभी तो श्वासों का व्यवधान भी असहनीय हो जाता है। किसी ने कहा भी है-

ऐ साँसो ! ज़रा आहिस्ता चलो, धड़कनों से भी इबादत में खलल पड़ता है।

सातिशय पुण्य-दायिनी एवं पाप-नाशिनी भक्ति सकाम कैसे हो सकती है?

Prayer must never be answered. If it is, it is not prayer. It is barter.

अर्थ :- प्रार्थना फलाभिलाषा से रहित ही होनी चाहिये, क्योंकि फलार्थी की प्रार्थना, प्रार्थना नहीं, सौदा है।

यदि कदाचित् /दैव-वश भगवान् स्वयं आकर (यों ऐसा होता नहीं) उसे कुछ मांगने के लिये बाध्य करें, तो वह आनंदाश्रु-पूरित नेत्रों से प्रभु-चरणों पर दृष्टि रख गद्गद् वाणी में कहता है-

याचेऽहं याचेऽहं जिन ! तव चरणारविन्दयोर्भक्तिम्।
याचेऽहं याचेऽहं पुनरपि तामेव तामेव ॥18॥

अर्थ :- हे जिनेन्द्र ! मैं मांगता हूँ ! आपके चरण-कमलों की भक्ति मांगता हूँ, याचना करता हूँ, जन्मान्तर में उसी-उसी भक्ति की मांग करता हूँ, अन्य कुछ नहीं चाहता !

एक सूफी संत का भी यही कहना है-

सजदे के सिले में फिरदौस मुझे मंज़ूर नहीं
बेलौस बंदा हूँ मैं, कोई मजदूर नहीं !

अर्थ :- प्रणाम के पुरस्कार में स्वर्ग की संपदा भी मुझे स्वीकार नहीं है, कारण कि मैं एक निष्काम सेवक हूँ, कोई वेतन-बद्ध कर्मी नहीं !

साधना के क्षेत्र में भी भक्ति की प्रतिष्ठा है। चंचल मन की स्थिरता दुष्कर है। ध्यान और स्वाध्याय से बाहर आया हुआ मन भगवद्-भक्ति का आलंबन पाकर अनिष्ट से बच जाता है। साधक तत्त्व-विवेक के साथ प्रवृत्ति-विवेक का धारक होता है। सराग अवस्था में विषयानुराग अनर्थकारी है, इसलिये धर्मानुराग प्रयत्नपूर्वक अंगीकार करनेयोग्य है। तप अथवा विद्वत्ता के मद में चूर होकर जिन्होंने भक्ति की उपेक्षा की, वे भुक्ति और मुक्ति दोनों से वंचित रह गये ! कोरा शब्द-ज्ञान या भावना-शून्य-भेष कल्याणकारी नहीं हो सकता। श्री वादिराज मुनि एकीभाव स्तोत्र में कहते हैं-

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिकाकुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढमहामोह-मुद्रा-कवाटम् ॥13॥

भावार्थ :- हे भगवन् ! मोक्ष के द्वार पर महामोहरूपी सुदृढ़ ताला लगा हुआ है। पवित्र ज्ञान और आचरणवाला मोक्षार्थी भी आपकी प्रगाढ़ भक्तिरूपी चाबी के बिना उसे कैसे खोल

सकता है? तात्पर्य यह है कि उच्चकोटि का ज्ञान एवं आचारण होते हुए भी यदि प्रगाढ़ भगवद्-भक्ति न हो तो निर्वाण असंभव है।

गुणानुरागी, गुणी से प्रेम न करे, यह असंभव है। यदि भक्ति निष्काम होगी, तो चमत्कार को नमस्कार नहीं, किन्तु नमस्कार में चमत्कार होगा!

अध्यात्म के प्रखर उद्घोषक आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं-

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परम-भत्ति-राएण।
ते जम्म-वेलि-मूलं खणंति वर-भाव-सत्थेण ॥153॥ (भाव-पाहुड)

अर्थ :- जो भव्य प्राणी उत्कृष्ट भक्ति-संबंधी अनुराग से जिनेन्द्र-प्रभु के चरण-कमलों को नमस्कार करते हैं, वे उत्तम भावरूपी शस्त्र द्वारा संसाररूपी लता की जड़ खोद डालते हैं।

विद्वत् शिरोमणि आचार्य वीरसेन स्वामी का कथन है-

जिण-पूजा-वंदण-णमंसणेहि य बहु-कम्म-पदेस-णिज्जरुवलंभादो।

अर्थ :- जिन-पूजा, वन्दना और नमस्कार के द्वारा भी बहुत कर्म-प्रदेशों की निर्जरा का लाभ होता है।

अरहंत-णमोक्कारो संपहिय-बंधादो असंखेज्ज-गुण-कम्मक्खय-कारओ त्ति तत्थ वि मुणीणं पवुत्ति-पसंगादो।

अर्थ :- अरहंत-नमस्कार तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यात गुनी कर्म-निर्जरा का कारण है, अत: उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्रासंगिक है। (जयधवला पु.1 पृ. 8)

स्वामी समन्तभद्रादि के दृष्टान्त अरहंत-नमस्कार की महिमा के समर्थक हैं। भक्त और भगवानरूपी तटों को जोड़नेवाला सेतु भक्ति ही है। इसी से नाम-स्मरण, गुण-स्तवन या पूजन में प्रवृत्ति होती है। भक्ति के मिष से होनेवाला भावावेश का अतिरेक भगवान् के सुन्दर स्वरूप को यथावत् नहीं रहने देता है।

भगवान् आदिनाथ के स्तोत्र का उद्भव

जैन-जगत् में सर्वमान्य तथा स्तोत्र-साहित्य में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त भक्तामर-स्तोत्र का नाम किसने नहीं सुना? संयत उद्गारों से की गई आदि-तीर्थंकर की यह स्तुति सबके मन को प्रभावित करती है। आचार्य मानतुङ्ग स्वामी के पवित्र हृदय से प्रस्फुटित यह भावभीनी रचना प्रभु-भक्ति से ओत-प्रोत है तथा सरसता, गंभीरता एवं पद-लालित्य की छटा से परिपूर्ण है। ऐसी विश्रुति है कि बेड़ियों से बँधे और कारागार में डाले गये आचार्यश्री इसके प्रभाव से स्वयं बन्धन-मुक्त हुए थे तथा इस अतिशय से प्रभावित होकर पक्ष-विपक्ष सभी गुरु-चरणों में नम्रीभूत हुए थे । तब एक ऐतिहासिक धर्म-प्रभावना की घड़ी उपस्थित हुई थी। स्तुति के प्रभाव से लोह या मोह की बेड़ियाँ तो टूट सकती हैं, पर कारागार से मुक्ति पाने के लिये एक निर्ग्रन्थ श्रमण (दिगंबर साधु) स्तुति करे, यह बात आश्चर्यजनक है। बेड़ियाँ तोड़ने के अभिप्राय की झलक पूरे स्तोत्र में कहीं भी नहीं मिलती। अष्टम काव्य में स्तोत्र निर्माण का उद्देश्य पाप-क्षय को बतलाया है तथा पञ्चम, षष्ठ एवं अड़तालीसवें काव्य में भक्ति-भाव को ही इसका प्रमुख हेतु बतलाया है। वीतराग मुनि, वीतराग प्रभु की सकाम-भक्ति कैसे करे?

भक्ति तो भीतर से स्वत: उमड़ती है, परिस्थिति-वश नहीं की जाती। मूलत: यह श्री आदिनाथ-स्तोत्र है, पर प्रारंभ में "भक्तामर" होने के कारण इसका प्रचलित नाम भक्तामर स्तोत्र है। यह कृति आदर्श- भक्ति का अनूठा उदाहरण है, रोम-रोम को झंकृत करनेवाली है।

भक्तामर का रचनाकाल

इस विषय में विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के उपलब्ध अभिमत अवलोकनीय हैं। कुछ उदाहरण यथासंभव प्रस्तुत किये जाते हैं-

1. राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य ने **आदिपुराण** (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन) की प्रस्तावना के पृ. 11 पर स्तोत्रकार को 7 वीं शती ई. का स्वीकार किया है।

2. जैन दर्शनाचार्य एवं साहित्याचार्य पं. अमृतलाल जैन शास्त्री के अभिप्रायानुसार राजा हर्षवर्धन का काल ही आचार्य मानतुङ्ग का काल है। (दे. भक्तामर-स्तोत्रम्, राजविद्या मन्दिर प्रकाशन 1 वाराणसी, पं. अमृतलाल शास्त्री की प्रस्तावना पृ. 6)

3. पं. मिलापचन्द एवं रतनलाल कटारिया ने **जैन निबन्ध रत्नावली** में उक्त काल का ही उल्लेख किया है।

4. राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा सम्मानित स्व. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री (जैन ज्योतिषाचार्य) आरा वालों ने अपने निबंध **कवीश्वर मानतुङ्ग** में लिखा है-

"भोज का राज्य-काल 11 वीं शताब्दी है, अतएव भोज के राज्यकाल में बाण और मयूर के साथ मानतुंग का साहचर्य कराना संभव नहीं है। आचार्य कवि मानतुङ्ग के भक्तामर स्तोत्र की शैली मयूर और बाण की स्तोत्र-शैली के समान है। अतएव भोज के राज्य में मानतुङ्ग ने अपने स्तोत्र की रचना नहीं की है। भक्तामर-स्तोत्र के आरंभ करने की शैली पुष्पदंत के **शिव-महिम्नि-स्तोत्र** से प्राय: मिलती है। प्रातिहार्य एवं वैभव-वर्णन में भक्तामर पर **पात्रकेसरी-स्तोत्र** का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। अतएव मानतुङ्ग आचार्य का समय 7 वीं शती है। यह शती मयूर, बाणभट्टादि के चमत्कारी स्तोत्रों के लिये प्रसिद्ध भी है।"

5. डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने अपनी पुस्तक **जैना सोर्सेज ऑफ दी हिस्टरी ऑफ एन्शियेन्ट इन्डिया** (दिल्ली 1964 पृ. 169-170) में स्तोत्रकार का काल 7 वीं शती ई. निर्धारित किया है-

"एक वीरदेव क्षपणक नामक दिगम्बर मुनि का भी हर्षवर्धन (606-647 ई.) के समय बाण का मित्र होना पाया जाता है। संभव है मानतुङ्ग आचार्य उक्त वीरदेव के शिष्य या गुरु रहे हों। धनञ्जय के भी वह गुरु हो सकते हैं। अतएव भक्तामरकार मानतुङ्ग मुनि का समय लगभग 600-650 ई. माना जा सकता है।"

Religion and Culture of the Jainas by Dr. Jyotiprasad Jain. Ch. III. p.26, History of Jainism after Mahavira...

The Emperor Harsha (607-647 A.D.), though a Buddhist, was tolerant towards the Jainas and patronised Manatunga, a Jain saint......

6. डॉ. भोलाशंकर व्यास **संस्कृत-कवि-दर्शन** में लिखते हैं-

बाण के अतिरिक्त अन्य कई कवि हर्ष की सभा में विद्यमान थे। **सूर्य-शतक** या **मयूर-शतक** के रचयिता मयूर कवि तथा **भक्तामर स्तोत्र** नामक स्तोत्र-काव्य के कर्ता मानतुङ्ग दिवाकर भी बाण के साथ हर्ष की राज-सभा में थे।'' (संस्कृत कवि दर्शन पृ. 483-484)

7. इतिहासवेत्ता पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने **सिरोही का इतिहास** नामक ग्रन्थ में स्तोत्रकार को हर्षकालीन माना है।

8. डॉ. ए.वी. कीथ ने संस्कृत-साहित्य के इतिहास-विषयक (A history of Sanskrit literature- 1941-p.214-215) पुस्तक में स्तोत्रकार को बाण कवि के समकालीन स्वीकार किया है।

9. प्रो. विण्टरनित्स ने History of Indian literature- II में आचार्य श्री को क्लासिकल संस्कृत युग (7 वीं शती ई.) का अनुमानित किया है।

10. भक्तामर एवं कल्याण मन्दिर स्तोत्र के जर्मन भाषानुवादक यूरोपीय प्राच्यविद डॉ. हर्मन जैकोबी (1876 ई.) का भी इसी ओर झुकाव रहा है।

भक्तामर-रहस्य के प्रारंभिक पृष्ठों पर डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन के सामग्री-प्रचुर लेख आविर्भाव में स्तोत्र-विषयक विभिन्न अवतरण-कथाओं का सुंदर संग्रह संक्षिप्तरूप से उद्धृत है। जैकोबी, विण्टरनित्स, पं. दुर्गाप्रसाद आदि प्राच्यविद और अनेक जैन विद्वान भी प्रायः इसी मत के हैं कि उक्त कथानकों में नाम, स्थान एवं काल इतने अंतर को लिये हुए हैं कि उनकी ऐतिहासिकता विश्वसनीय नहीं है। नाम-समयादि-विषयक पारस्परिक-विरोध यह सूचित करता है कि उक्त कथानकों का कोई ठोस ऐतिहासिक आधार नहीं था। डॉ. हर्मन ने तो यहाँ तक कह दिया, 'भक्तामर तो स्वयं ऐसा अमूल्य रत्न है जिसे चमकाने के लिये उसे काल्पनिक कथानकों की खोटी धातु में जड़ने की आवश्यकता ही नहीं है।''

भक्तामर की पद्य-संख्या

दिगम्बर मान्यतानुसार इसमें अड़तालीस पद्य हैं। श्वेताम्बर आम्नाय भी प्रायः इसे ही मान्यता देता है, पर मन्दिर-मार्गी श्वेताम्बर 32-35 वें पद्यों को छोड़ 44 पद्यों का पाठ करते हैं। सं. 1334 के श्वेताम्बराचार्य प्रभाचन्द्र सूरि द्वारा रचित प्रभावक-चरित में गर्भित 169 पद्य-प्रमाण मानतुङ्ग -प्रबन्ध में स्तोत्रकर्ता की कथा आयी है। राजा ने उन्हें 44 बेड़ियों में जकड़वा कर कारागार में डलवाया और वे स्तोत्र-पाठ द्वारा क्रमशः उनसे मुक्त हुए। 48 तालों की प्रसिद्धि दिगम्बराम्नाय में है। निर्णयसागर प्रेस से मुद्रित सप्तम गुच्छक के संपादक ने टिप्पणी में 44 पद्यों को ही मान्यता देते हुए उक्त 4 पद्यों की भाषा-शैली को मूल से भिन्न बतलाकर प्रक्षिप्त

कहा है, तथापि उन्होंने अपने कथन को प्रमाणित करने के लिये यह बतलाने का कष्ट नहीं किया कि वह शैली-भेद कहाँ है? अस्तु।

श्री अगरचन्द्र नाहटा का आग्रह है कि श्वेताम्बर-परम्परा-सम्मत 44 श्लोकीय पाठ ही मूल एवं प्राचीनतम पाठ है (अगरचंद नाहटा- भक्तामर के 4-4 अतिरिक्त पद्य शोधांक- 29, पृ. 199-202)। इसके अतिरिक्त 4 अन्य पद्य भी किन्हीं प्राचीन प्रतियों में अधिक प्राप्त होते हैं। लगभग 4 प्रतियों में परस्पर भिन्न 4 पद्य अधिक हैं-

1. अनेकान्त, वर्ष 2, किरण 1 में प्रातिहार्यों की पुनरुक्ति है।
2. जैनमित्र फाल्गुन शु. 6, वी. नि. संवत् 2486 में **पाठ का फल हैं।**
3. श्री तिलकधर शास्त्री लुधियाना की 1870 की प्रति में बीजककाव्य शीर्षक से 4 काव्य हैं।
4. चतुर्थ चतुष्क ''मानतुंगीय काव्य चतुष्टयी'' Bhandarkar Institute, Pune में प्रातिहार्यों की पुनरुक्ति है।

उपरोक्त चार काव्य निम्नांकित हैं-

1. **नातः परः परमवचोभिधेयो,**
लोकत्रयेऽपि सकलार्थविदस्ति सार्वः।

उच्चैरितीव भवतः परिघोषयन्त-
स्ते दुर्गभीरसुरदुन्दुभयः सभायाम्॥ 1॥

वृष्टिर्दिवः सुमनसां परितः पपात,
प्रीतिप्रदा सुमनसां च मधुव्रतानाम्।

राजीवसा सुमनसा सुकुमारसारा,
सामोदसम्पदमदाज्जिन ते सुदृश्यः॥ 2॥

पूष्मामनुष्य सहसामपि कोटिसंख्या-
भाजां प्रभाः प्रसरमन्वहया वहन्ति।

अन्तस्तमः पटलभेदमशक्तिहीनं,
जैनी तनुद्युतिरशेषतमोऽपि हन्ति॥ 3॥

देव त्वदीय सकलामलकेवलाय,
बोधातिगाधनिरुपप्लवरत्नराशेः।

घोषः स एव इति सज्जनतानुमेते,
गम्भीरभारभरितं तव दिव्यघोषः॥ 4॥

''इन श्लोकों के विषय में यदि क्षणभर विचार किया जाय तो चारों श्लोक भक्तामर स्तोत्र के लिए व्यर्थ ठहरते हैं, क्योंकि इन श्लोकों में क्रमशः दुन्दुभि, पुष्पवर्षा, भामंडल तथा दिव्यध्वनि इन चार प्रातिहार्यों को रखा गया है। अतः ये चारों श्लोक भक्तामर स्तोत्र के लिए पुनरुक्ति के रूप में व्यर्थ ठहरते हैं।'' प्रथम काव्य के प्रथम चरण में दो अक्षर न्यून हैं।

''जैन मित्र'' फाल्गुन सुदी 6 वीर सं. 2486 के अंक में भी इनसे भिन्न चार श्लोक छपे हैं-

2. यः संस्तुवे गुणभृतां सुमनो विभाति,

यः तस्करा विलयतां विबुधाः स्तुवन्ति।

आनंदकन्द हृदयाम्बुजकोशदेशे,

भव्या व्रजन्ति किल याऽमरदेवताभिः ॥ 1 ॥

इत्थं जिनेश्वर सुकीर्तयतां जिनोति,

न्यायेन राजसुखवस्तुगुणा स्तुवन्ति।

प्रारम्भभार भवती अपरापरां या,

सा साक्षणी शुभवशो प्रणमामि भक्त्या ॥ 2 ॥

नानाविधं प्रभुगुणं गुणरत्न गुण्या,

रामा रमंति सुरसुन्दर सौम्यमूर्तिः।

धमार्थकाम मनुयो गिरिहमरत्नाः,

उध्यापदो प्रभुगुणं विभवं भवन्तु ॥ 3 ॥

कर्णौ स्तुवेन नभवानभवत्यधीशः,

यस्य स्वयं सुरगुरु प्रणतोसि भक्त्या।

शर्मार्धनोक यशसा मुनिपद्मरंगा,

मायागतो जिनपतिः प्रथमो जिनेशः ॥ 4 ॥

''पर ये सभी मूलग्रन्थकारकृत नहीं हैं, क्योंकि भक्तामर स्तोत्र के पठन का फल बताकर स्तोत्र को वहीं समाप्त कर दिया है। अतः ये अतिरिक्त श्लोक किसी ने बाद में बनाये है, इनकी रचना भी ठीक नहीं है और अर्थ भी सुसंगत नहीं है।''

इनके सिवा भी एक गुटके में 4 श्लोक और पाये जाते हैं, जिन्हें बीजक-काव्य लिखा है। इनकी भी स्थिति उपरोक्त ही है तथा कुछ छन्दोभंग की विसंगति दृष्टिगोचर होती है। वे भी मूलस्तोत्रकारकृत नहीं हैं। वे चार पद्य इस प्रकार हैं-

3. ओं आदिनाथ अर्हन्सुकुलेवतंसः,

श्रीनाभिराज निजवंश शशिप्रतापः।

इक्ष्वाकुवंश रिपुमर्दन श्रीविभोगी,

शाखा कलापकलितो शिव शुद्धमार्गः ॥ 1 ॥

कष्ट प्रणाश दुरिताप समावनाहि-

अंभोनिधौ दुखय तारक विघ्नहर्ता।

दुःखाविनारि भय भग्नति लोह कष्ट-

तालोद्धघाट भवभीत समुत्कलापाः ॥ 2 ॥

श्रीमानतुंग गुरुणा कृत बीज मंत्रः,

यात्रा स्तुतिः किरण पूज्य सुपादपीठः।

भक्तिभरो हृदयपूर विशाल गात्रा-

कौ धौ दिवाकर समां वनिता जनार्हा ॥ 3 ॥

त्वं विश्वनाथ पुरुषोत्तम वीतरागः

त्वं जैन राज कथिता शिवशुद्धमार्गा।

त्वौच्चाट भंजनवपुः खल दुःखटालान्-

त्वं मुक्तिरूप सुदया पर धर्मपालान् ॥ 4 ॥

4. ''विष्वग्विभोः सुमनसः किल वर्षयन्ति।

दिग्बन्धनाः सुमनसः किमु ते वदन्ति ॥

त्वत्सङ्गताविहस्रतां जगती समस्ता-

स्त्यामोदिनी विहसतामुदयेन धाम्नः ॥ 1 ॥

द्वेधापि दुस्तरतमः श्रमविप्रणाशा-

त्साक्षात्सहस्रकरमण्डलसम्भ्रमेण।

वीक्ष्य प्रभोर्वपुषि कञ्चनकाञ्चनाभे

प्रोद्बोधनं भवति कस्य न मानसाब्जम् ॥ 2 ॥

दिव्यो ध्वनिर्ध्वनितदिग्वलयस्तवार्हन्।

व्याख्यातुरुत्सुकयतेऽत्र शिवाध्वनीयाम्।

तत्त्वार्थदेशनविधौ ननु सर्वजन्तु,

भावाविशेषमधुरः सुरसार्थपेयः ॥ 3 ॥

विश्वैकजैत्रभटमोहमहामहेन्द्रे।

सद्यो जिगाय भगवान् निगदन्निवेत्थम्।

सन्तर्जयन् युगपदेव भयानि पुंसां

मन्द्रध्वनिर्नदति दुन्दुभिरुच्चकैस्ते ॥4॥''

पुणे स्थित भंडारकर प्राच्य-विद्या शोध-संस्थान में संरक्षित एक प्रति में ''मानतुंगीय काव्य चतुष्टयी'' के नाम से वही चार पद्य हैं।

भक्तामर के जर्मन-भाषानुवादक, जिन्हें संभवतः 44 काव्यों वाली प्रति ही उपलब्ध हुई थी, का अनुमान है कि काव्य क्र. 39 और 43 (दिगम्बर पाठ में 43 और 47) प्रक्षिप्त हैं, अतः मूल में केवल 42 काव्य ही हैं।

यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वास्तव में पद्यों की संख्या कितनी है? विचार करने पर 44 पद्यों वाली मान्यता एक प्रश्न उपस्थित करती है कि क्या श्वेताम्बर मत अरहंत परमेष्ठी के 4 प्रातिहार्य ही स्वीकार करता है, जिससे स्तोत्रकार ने शेष 4 का उल्लेख छोड़ दिया? यह सर्व-विदित है कि दोनों संप्रदायों में प्रातिहार्य-संबंधी कोई मतभेद नहीं है। फिर यदि भक्तामर में केवल 4 प्रतिहार्यों को ही लिया जाये, तो क्या यह गुण-संपन्न स्तोत्र अधूरा नहीं कहलायेगा? यदि किसी कारण-वश कल्याण मन्दिर स्तोत्र की पद्य-संख्या से साम्य स्थापित करने के लिये 44 संख्या का समर्थन किया जाये, तो प्रश्न और उभर कर सामने आता है कि पद्य-क्रमांक 19-26, में अष्ट-प्रातिहार्यों का वर्णन कल्याण -मन्दिर में तो स्वीकृत है, फिर भक्तामर में आपत्ति क्यों है? तथा, इन काव्यों में साम्प्रदायिकता की कोई झलक भी नहीं मिलती जिसके आधार पर इन्हें विवादास्पद ठहराया जा सके।

अब एक अन्य तर्क उठाया जा सकता है- आ. श्री ने प्रातिहार्य-संबन्धी 4 काव्यों में तथा कमल-रचना एवं वैभव-प्रशंसा-सबन्धी काव्यों में 'भवत:' और 'तव' शब्दों का ही प्रयोग किया, किन्तु मध्य में आगत इन 4 काव्यों में वे नहीं पाये जाते। 32-35 वें काव्यों में आया 'ते' शब्द शैली से विषम होने के कारण इन्हें प्रक्षिप्त (बाद में मिलाये गये) सिद्ध करता है। यदि पूर्वापर निरीक्षण करके विचारा जाये,तो यह सहज ही ज्ञात होगा कि ते शब्द स्तोत्रकार की शैली के बहिर्भूत नहीं है। प्रमाण स्वयं देखें-

पद्य 4	**कस्ते क्षम:**	पद्य 12 **यत्ते समानमपरं**
पद्य 13	**वक्त्रं क्व ते**	पद्य 15 **चित्रं किमत्र यदि ते**
पद्य 39	**क्रम-युगाचल-संश्रितं ते**	

अत: 'ते' शब्द के कारण ये काव्य प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं होते। यदि यह कहा जाये कि 'ते' शब्द वाले 4 पद्यों में प्रातिहार्य अधिक महत्वपूर्ण हैं, भगवान कम, अत: इस आधार पर शैली-भेद दृष्टिगोचर होने से वे प्रक्षिप्त ही हैं, तो विचारना पड़ता है कि ऐसा है क्या? शान्तचित्त से अवलोकन करने पर यही सिद्ध होता है कि उक्त काव्यों द्वारा आदि-प्रभु की महिमा ही दर्शायी गई है, प्रातिहार्यों की नहीं।

जर्मन अनुवादक ने संभवत: अनावश्यक जानकर युद्ध-संबंधी द्वितीय काव्य को प्रक्षिप्त समझ लिया। इस संभावना पर कुछ विचार किया जाता है। साहित्य का दोष होकर भी पुनरुक्ति धार्मिक-काव्यों में आपत्तिजनक नहीं है। इसी स्तोत्र में आचार्यश्री ने कुछ बातों को दोहराया है, जैसे-

1. स्तोत्रकार ने लघुता-प्रदर्शन अनेक बार किया है।
2. स्तुति करने का भाव कई बार प्रकट किया है।
3. भक्ति को एक से अधिक बार स्तुति करने में प्रेरक बतलाया है।
4. जिन-दर्शन के आनंद को एक से अधिक पद्यों में प्रदर्शित किया है।

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य स्थल मिल सकते हैं, जहाँ स्तुतिकर्ता ने एक विषय को एकाधिक बार प्रस्तुत किया हो। अत: उक्त काव्य को प्रक्षिप्त मानने का यह कोई ठोस आधार सिद्ध नहीं होता। यदि दो काव्यों में युद्ध-विषयक बात आ गई, तो आपत्ति नहीं मानी जा सकती। दूसरे काव्य की आवश्यकता इस रूप में भी स्वीकृत की जा सकती है कि पहले काव्य में तो शत्रु की विकट सेना का भेदन दर्शाया है और दूसरे में युद्ध की बीभत्स दशा के चित्रणपूर्वक विजय-प्राप्ति का दर्शन कराया है। भाषा के आधार पर तो इसे प्रक्षिप्त कहना असंगत है।

उपान्त्य काव्य को पिष्ट-पेषण मानकर प्रक्षिप्त कोटि में रख दिया गया है, ऐसा जान पड़ता है। डॉ. हर्मन जैकोबी स्तोत्र के अध्येता हैं, अत: उन्होंने उक्त काव्यों को अकारण प्रक्षिप्त नहीं कहा। उपान्त्य पद्य में स्तोत्रकार द्वारा स्तोत्र-पाठ का फल-दर्शन भी संभवत: उन्हें खटका हो। एकसाथ 8 उपद्रवों का उल्लेख स्थूलत: उपसंहारात्मक एवं सूक्ष्मत: आध्यात्मिक भी हो सकता

है। यदि कदाचित् वैद्य अपनी दवा के गुण कह दे, तो क्या हानि है? प्राचीन आचार्यों ने भी ग्रन्थ स्वाध्याय का फल अपनी रचना के अंत में दिया है। उनका लक्ष्य सर्वदा धर्म-प्रभावना का रहा। लोकेषणा, आत्मज्ञ को कैसे इष्ट हो सकती है? यदि आचार्य मानतुङ्ग स्वामी की मान-प्रतिष्ठा से नि:स्पृह छवि का स्मरण किया जाये, तो इस आशंका का सहज ही परिहार हो सकता है कि पूज्य श्री ने पाठ-फल क्यों दर्शाया? शैली और क्रम की विसंगति भी प्रक्षिप्त समझे गये इन काव्यों में दृष्टिगोचर नहीं होती।

यदि इन अष्ट उपद्रवों को उपान्त्य काव्य माना जाये, तो बड़ा ही सुन्दर भाव उपलब्ध हो सकता है

मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तास्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥

(य: मतिमान्) जो तत्वज्ञ मनुष्य (तावकं इमं स्तवं) आपके इस स्तोत्र का (अधीते) पाठ करता है, (तस्य) उसका (मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थं भयं) मनरूपी मद-मत्त हाथी, कालरूपी सिंह, काम-क्रोधरूपी ज्वालामय दावाग्नि, विषय-भोगरूपी विषधर, मोह-वैरी के संग्राम, संसार-समुद्र, तृष्णा रूपी जलोदर-रोग एवं स्नेह-वैररूपी बन्धन से प्रादुर्भूत भय (आशु) तत्काल (नाशं उपयाति) विनाश को प्राप्त हो जाता है (इव) मानो (भिया) भय से ही आक्रान्त हो गया हो।

अड़तालीस पद्यों के पश्चात् के काव्य-चतुष्क में प्रथम तो प्रातिहार्यों की पुनरुक्ति एवं छन्दोभंग युक्त है, द्वितीय अर्थ-विसंगति एवं रचना-वैषम्य से युक्त है तथा पाठ-फलपूर्वक स्तोत्र को समाप्त करता है। तृतीय चतुष्क में छन्दोभंगादि विसंगतियाँ स्पष्टत: दृष्टि-गोचर होती हैं, अत: 4 भिन्न प्रतियों में उपलब्ध कुल 16 काव्य मूल में सम्मिलित नहीं हो पाते। फलत: मनीषियों ने कुल 48 काव्य ही माने हैं और उनमें स्थानकवासी श्वेतांबराचार्य अमर मुनि (कविरत्न) तथा श्वेताम्बर साध्वी महासती उम्मेदकुँवर जी भी हैं, जिन्होंने स्वाध्याय-सुमन में 48 काव्यों को सार्थ दिया है। विद्वज्जन विशेष निर्णय करें।

भक्तामर वाङ्मय

सारगर्भित व सरस होने के कारण भक्तामर स्तोत्र जगत में अमर बन गया है। भक्त को अमर बनाने वाली यह रचना क्लिष्टकल्पना एवं अतिरिक्त साहित्यिक-पाण्डित्य से मुक्त होने के कारण मन पर बोझ नहीं डालती। देश विदेश की विभिन्न भाषाओं में समुपलब्ध गद्यपद्यमय अनुवाद इस स्तोत्र की लोकप्रियता को स्वयं प्रमाणित करते हैं। भक्तामर पर आधारित समस्यापूर्तियों की ही गणना लगभग 20-25 हैं। स्तोत्र की संस्कृत टीकाएँ भी अनेक हैं। भक्तामर पूजन, भक्तामरोद्यापन, भक्तामर ऋद्धिमंत्र, भक्तामर कथालोक, भक्तामर महामंडल विधान, भक्तामर स्तोत्र माहात्म्य आदि नाना रचनाएँ पिछले 1000 वर्षों में हुई हैं। आज लगभग शताधिक तो ऐसे पद्यानुवाद हैं जो प्रकाशित हैं। कुछ प्राचीन एवं अप्राचीन चित्रयुक्त प्रतियाँ समुपलब्ध हैं तथा

अनेक संगीतमय कैसेट भी विभिन्न स्वरों में प्रचलित हैं। (भक्तामर-साहित्य संबंधी विशेष जानकारी के लिए देखें 'सचित्र भक्तामर रहस्य' में प्रकाशित प्रास्ताविक लेख आविर्भाव डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ)

भक्तामर पाठ

पाठ संबंधी विभिन्न विधियाँ उभय (दिगम्बर एवं श्वेताम्बर) संप्रदायों में प्रचलित हैं, जो कतिपय प्रकाशनों में दी गई हैं। नैमित्तिक पाठविधि, अखंड पाठविधि, तथा अन्य नियत-कालिक विधियाँ अनेक भक्त संकल्पपूर्वक अंगीकार करते हैं।

त्रैमासिक-पाठसंबंधी नियमावली

1. बन सके तो पद्मासन में, अन्यथा पालथी लगाकर स्थिर बैठें।
2. पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख हो।
3. पाठ के समय चित्त की एकाग्रता, हृदय का श्रद्धाभाव एवं शरीर-वस्त्रादि की पवित्रता अपेक्षित है।
4. स्तोत्र-पाठ केवल मध्य-दिवस और मध्य-रात्रि के संधिकालों में वर्जित है, तथापि प्रात:काल सर्वोत्तम है, क्योंकि तब मन अधिक शांत रहता है। (अखंड-पाठ में अर्थात् निरंतर 24 घंटों के पाठ में संधिकाल बाधक नहीं है।)
5. पाठारंभ शुक्लपक्ष की पूर्णा तिथि (5, 10 एवं 15)को करें। यदि ऐसा न हो सके, तो 1,3,6, 8, 11 और 13 को भी पाठ प्रारंभ किया जा सकता है।
6. गुरुमुख से श्रवण करके कण्ठस्थ करना उत्तम है। पश्चात् सविनय, गुरु-साक्षीपूर्वक नियम धारण करें। यदि योग न बने, तो देव और शास्त्रों की साक्षीपूर्वक नियम धारण करें।
7. पाठ के समय उच्चारण-शुद्धि का ध्यान रखें।
8. एक बार पाठ आरंभ करके उसे निरंतर चालू रखें।

एकवर्षीय पाठ संबंधी नियमावली

1. दोपहर के पहले पाठ कर लें, सूर्योदय की बेला श्रेष्ठ है।
2. बैठक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखें।
3. श्रावण, भाद्रपद, कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन/मगसिर), पौष एवं माघ महीनों के शुक्लपक्ष की पूर्णा (5, 10,15) नन्दा (1, 6, 11) तथा जया (3, 8, 13) पाठारंभ की श्रेष्ठ तिथियाँ हैं।
4. प्रारंभिक तिथि को एकाशन (एक बार आहार-जल) या उपवासपूर्वक व्यतीत करें और 24 घण्टे ब्रह्मचर्य का पालन करें।
5. सूतकपातक का विवेक रखें। ऋतुकाल में उच्चारण वर्जित है। नियम की अवधिपर्यन्त अभक्ष्य एवं व्यसनों से बचें।

नित्यपाठ संबंधी नियमावली

1. चैत्र, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ माह पाठारंभ के लिए वर्जित हैं।
2. शेष महीनों के शुक्लपक्ष की 1, 3, 5, 6, 10, 11, 13 एवं 15 तिथियाँ पाठारंभ के लिए मान्य तिथियाँ हैं।
3. जिनालय में श्रीजी के सम्मुख पाठ करना उत्तम है। अन्यत्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठें। पद्मासन में बैठें।
4. सूर्योदय के पूर्व पाठ करना उत्तम है, अन्यथा मध्याह्न के पूर्व पाठ कर लें।
5. विनय एवं आचरण शुद्धि का विवेक अनिवार्य है तथा श्रद्धा और स्थिरता भी अपेक्षित है।

उच्चारण

सामान्यत: उच्चारण-संबंधी निम्नलिखित निर्देश दृष्टव्य हैं-

1. संयुक्ताक्षर के पूर्व यदि लघु अक्षर हो तो स्वराघातपूर्वक उच्चारण करें। दो या दो से अधिक व्यञ्जनों वाला अक्षर संयुक्ताक्षर कहलाता है।

जैसे- क्ष = क् + ष   त्र = त् + र
ज्ञ = ज् + ञ   द्य = द् + य
प्र = प् + र

स्व = स् + व इत्यादि। स्वर अथवा स्वर-युक्त व्यञ्जन को अक्षर / वर्ण कहते हैं। संयुक्ताक्षर में आगत प्रथम व्यञ्जन के पिछले लघु वर्ण के साथ बलपूर्वक उच्चारित करना स्वराघात है। जैसे भक्त शब्द से भक् + त, विश्वास में विश् + वास, श्रद्धा में श्रद् + धा, विद्या में विद् + या, शिक्षक में शिक् + षक, लक्ष्य में लक् + ष्य, सप्रेम में सप् + रेम इत्यादि।

2. रेफ के नीचे वाले अक्षर को रुकते हुए उच्चारित करें। जैसे- दुन्दुभि र्ध्वनति में दुन्दुभिर् पर अटक कर ध्वनति बोलें। रेफ र् है, उसे र बोलने से एक अक्षर बढ़ जाता है। अधिक विराम देने पर तालभंग होगा।

3. आगामी अक्षर का उच्चारणस्थान ही अनुस्वार का उच्चारणस्थान हो, जैसे संसार सन् सार, मंगल मङ्गल, चंचल चञ् चल, अंश अञ् श, कंप कम् प इत्यादि।

4. विसर्ग (:) का उच्चारण दीवार से टकरा कर लौटी हुई ह की ध्वनि के समान हो।

5. स, श एवं ष के शुद्ध उच्चारण का प्रशिक्षण अवश्य लें।

6. ज को ज़, फ को फ़, ड ढ को ढ़, ड़, द्य को ध्य या द्व और म् को म्र न बोलें। फ को दोनों ओठ मिला कर बोलें।

7. सहस्र को सहस्त्र, ज्ञान को ग्यान, प्रवृत्त: को प्रवर्त: या प्रव्रत्त:, क्षण को छण आदि उच्चारित न करें।

8. स्तोत्र, स्तुति, स्पष्ट आदि शब्दों के प्रारंभ में 'इ' न जोड़ें किन्तु स के उच्चारण स्थान पर

जिह्वा लगाकर किंचित् वायु के निष्कासनपूर्वक तोत्र तुति या पष्ट आदि का उच्चारण करें।

9. भक्तामर-स्त्रोत्र बोलते समय भक्ताम्बर या भक्तांमर तथा इस्तोत्र स्त्रोत्र स्त्रोत्र आदि अशुद्ध उच्चारण न करें।

10. शशिनाह्नि को शशिना: + नि बोलें, न कि शशिनाहि या शशिनान्हि तथा वह्नि को वहनि न बोलकर व: नि बोलें। (पहले आधे ह का उच्चारण फिर नि का उच्चारण)

अन्य उच्चारणगत समस्याओं का समाधान योग्य प्रशिक्षण द्वारा संभव है।

यह स्तोत्र वसन्ततिलका नामक चतुर्दशाक्षरी छन्द में रचित है, जिसके तृतीय चरण में स्वरारोहणपूर्वक लयपरिवर्तन होता है। उचित मार्गदर्शन श्रेयस्कर होगा। प्रत्येक चरण में 7 लघु और 7 गुरु अक्षर हैं।

भक्तामर मंत्र-शक्ति

भक्तामर स्तोत्र केवल स्तोत्र ही नहीं अपितु मन्त्रशक्ति का निधान भी है। क्षु. मनोहर वर्णी जी का कथन है कि इसका प्रत्येक काव्य स्वयं एक स्वतंत्र मन्त्र है, क्योंकि म, न, त एवं र (मन्त्र) शब्द के 4 व्यंजन सभी पद्यों में हैं। तदनुसार इस स्तोत्र में 56 अक्षरों वाले 48 मन्त्र छिपे हैं। सर्वत्र अन्तरंग निमित्त निज-कर्म (पुण्य) है तथा बहिरंग निमित्त नोकर्म (मंत्र, औषधादि) है, अत: अन्यथा न लें। इन काव्यों का मन्त्रवत् विधिपूर्वक प्रात:काल जप करने पर निम्नलिखित फलोपलब्धियाँ होती हैं-

काव्य क्र.	कार्य	काव्य क्र.	कार्य
1.	सर्व-विघ्न-विनाशक	2.	मस्तक- पीड़ा नाशक
3.	सर्व-सिद्धि-दायक	4.	जलचर-भय-मोचक
5.	नेत्र-रोग-हारक	6.	विद्या-प्रसारक
7.	क्षुद्रोपद्रव निवारक एवं सत्त-भय-संहारक		
		10.	कूकर-विष-निवारक
11.	आकर्षण-कारक / वांछा-पूरक	12.	हस्ति-मद-भंजक / वांछित-रूप-दायक
13.	संपत्ति-दायक / देह-रक्षक	14.	आधि-व्याधि-नाशक
15.	सम्मान-सौभाग्य-वर्धक	16.	सर्व-विजय-दायक
17.	सर्व-रोग-निरोधक	18.	शत्रु-सैन्य-स्तंभक
19.	उच्चाटनादि रोधक	20.	संतान-संपत्ति-सौभाग्य-दायक
21.	सर्वसुख, सौभाग्य साधक	22.	भूत पिशाच बाधा निरोधक
23.	प्रेत बाधा नाशक	24.	शिरो रोग नाशक
25.	दृष्टि विष निवारक	26.	आधा सीसी पीड़ा निवारक

27.	शत्रु निवारक	28.	सर्व मनोरथ पूरक
29.	नेत्र पीड़ा निवारक	30.	शत्रु स्तम्भन कारक
31.	राज सम्मान दायक	32.	संग्रहणी निवारक
33.	सर्व ज्वर संहारक	34.	गर्भ संरक्षक
35.	ईति भीति निवारक	36.	लक्ष्मी प्रदायक
37.	दुष्टता प्रतिरोधक	38.	हस्ति मद भंजक/संपत्ति वर्धक
39.	सिंह शक्ति निवारक	40.	सर्वाग्नि शामक
41.	भुजंग भय नाशक	42.	युद्ध भय निवारक
43.	सर्व शान्ति दायक	44.	सर्वापत्ति निवारक
45.	जलोदरादि रोग नाशक/ विपत्ति निवारक	46.	बन्धन मुक्ति कारक
47.	अस्त्र शस्त्रादि निरोधक	48.	सर्वसिद्धि दायक

कुछ काव्यों की मन्त्रशक्तियाँ मङ्गलवाणी पृ. 280/282 पर इस प्रकार दी गयी हैं-

भक्तामर का दूसरा काव्य लक्ष्मी-प्राप्ति और शत्रु-विजय के लिये है। इसी प्रकार 6. बुद्धिप्रकाश के लिये, 10. वचन-सिद्धि के लिये, 11. खोई वस्तु पुन: प्राप्ति के लिये, 15. ब्रह्मचर्य, स्वप्नदोष की निवृत्ति, राज दरबार में सम्मान प्रतिष्ठा और लक्ष्मी की वृद्धि के लिये, 19. दूसरों के द्वारा किये हुए जादू, भूत-प्रेत का असर दूर हो, रोजगार अच्छा लगे, भाग्य हीन पुरुष भी भूखा न रहे, 20. पुत्र की प्राप्ति हो, 21. स्वजन और परजन सबका प्रेम हो, 28. सब प्रकार की मन की शुभ इच्छापूर्ण हो, 36. सम्पत्ति का लाभ हो, 45. सब प्रकार का भय और उपसर्ग दूर हो, तेज प्रताप प्रकट हो, सब प्रकार के रोगों की शांति हो। 46. राजा का भय दूर हो, जेलखाने से छूटे।

उपर्युक्त काव्यों की एक माला का जाप प्रतिदिन प्रात:काल में करना चाहिये। भक्तामर स्तोत्र महाप्रभावशाली है एवं सर्व प्रकार आनंद मंगलकारी है।

(48 काव्यों की मन्त्र-शक्तियाँ पूर्व प्रकाशित कृतियों से संकलित की गयी हैं।)

- क्षुल्लक ध्यानसागर

आचार्यश्री मानतुंग विरचित

मूल- संस्कृत भक्तिप्रधान रचना

भक्तामर स्तोत्र

हिन्दी पद्यानुवाद, अन्वयार्थ एवं अन्तर्ध्वनि

पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी मुनिराज

के शिष्य

पूज्य क्षु. 105 श्री ध्यानसागर जी

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा
मुद्द्योतकं दलित-पाप-तमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले[1] पततां जनानाम् ॥ 1॥
यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥ 2॥

अन्वयार्थ

(भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणां) नतमस्तक भक्त देवों के मुकुटों में जड़ित मणियों की किरणों के (उद्द्योतकं) प्रकाशक, (दलित-पाप-तमोवितानं) पापरूप अन्धकार-प्रसार के विनाशक तथा (युगादौ)युगारंभ में (भव-जले पततां जनानां) संसाररूप जल में डूबने वाले लोगों के (आलम्बनं) आश्रय-स्वरूप (जिन-पाद-युगं) भगवान् जिन के चरण-युगल को (सम्यक्) भली भाँति (प्रणम्य) प्रणाम करके, (अहं अपि)मैं भी (तं प्रथमं जिनेन्द्रं) उन प्रथम तीर्थंकर की (किल स्तोष्ये) अवश्य स्तुति करूँगा, (यः) जो (सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधात्) सर्व शास्त्रों के तत्वज्ञान से (उद्भूत-बुद्धि-पटुभिः)उत्पन्न हुई बुद्धि के कारण चतुर (सुर-लोक-नाथैः) स्वर्ग के इन्द्रों द्वारा (जगत्त्रितय-चित्त-हरैः) त्रि-भुवन मनोहारी (उदारैः स्तोत्रैः) महान् स्तुतियों से (संस्तुतः) अच्छी तरह वन्दित हुए थे।

1 भव- निधौ

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा

पद्यानुवाद[1]

भक्त-सुरों के नत मुकुटों की, मणि-किरणों का किया विकास,
अतिशय विस्तृत पाप-तिमिर का किया जिन्होंने पूर्ण विनाश।
युगारंभ में भवसागर में डूब रहे जन के आधार,
श्री-जिन के उन श्री-चरणों में वंदन करके भली प्रकार॥
सकल-शास्त्र का मर्म समझ कर सुरपति हुए निपुण मतिमान्
गुण-नायक के गुणगायक हो, किया जिन्होंने प्रभु-गुण-गान।
त्रि-जग-मनोहर थीं वे स्तुतियाँ, थीं वे उत्तम भक्ति-प्रधान
अब मैं भी करने वाला हूँ, उन्हीं प्रथम-जिन का गुण-गान॥

अन्तर्ध्वनि

ज्ञान-कल्याणक के पश्चात् नम्रीभूत देव-समूह **सर्वज्ञत्व** को, विस्तृत मोहनीय कर्मरूप पाप-तिमिर का विनाश **वीतरागता** को तथा भव-समुद्र में डूबने वालों को तारना **हितोपदेशिता** को सूचित करता है। सर्वज्ञ, वीतराग एवं हितोपदेशी आदि-जिन के चरण-युगल को नमस्कार करके अब मैं भी उन जगत्-पूज्य की स्तुति करूँगा, जो पहले सर्व-शास्त्रों के मर्मज्ञ, बुद्धिमान और स्तुति करने में चतुर इन्द्रों द्वारा उत्तम एवं मधुर स्तोत्रों से वंदित हुए थे।

1 वीर छन्द (16, 15 मात्रा)

मेरा प्रयास अविचारित है।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ[2] !
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ 3 ॥

अन्वयार्थ

(विबुधार्चित-पाद-पीठ) हे देव-पूजित चरण-वेदिका के धारक भगवन्! (बुद्ध्या विनापि) इन्द्र जैसी बुद्धि के बिना भी (अहं विगत-त्रपः) मैं निर्लज्ज (स्तोतुं) स्तुति करने के लिये (समुद्यत-मतिः) उत्कण्ठित मति वाला हो रहा हूँ। (बालं विहाय) बालक को छोड़ (अन्यः कः जनः) दूसरा कौन मनुष्य (जल-संस्थितं) पानी में पड़े (इन्दु-बिम्बं) चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को (सहसा) एकाएक (ग्रहीतुं इच्छति) पकड़ना चाहता है?

पद्यानुवाद

ओ सुर-पूजित-चरण-पीठ-धर प्रभुवर! मैं हूँ बुद्धि-विहीन,
स्तुति करने चल पड़ा आपकी हूँ निर्लज्ज न तनिक प्रवीण।
जल में प्रतिबिम्बित चन्दा को बालक सचमुच चन्दा जान,
सहसा हाथ बढ़ाता आगे ना दूजा कोई मतिमान्॥

अन्तर्ध्वनि

हे पूज्य-पाद! इन्द्र जैसी बुद्धि के बिना, आपकी स्तुति करने को उत्कंठित होना मेरा बाल-हठ है, निर्लज्जता है। पानी में पड़े चंद्रमा के प्रतिबिंब पर बालक ही झपटता है, न कि कोई बुद्धि-सम्पन्न मनुष्य।

2 विबुधार्चित-पाद-पीठं

स्तुति करने की सामर्थ्य किसमें है ?

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र ! शशाङ्क-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बु-निधिं भुजाभ्याम् ॥ 4 ॥

अन्वयार्थ

(गुण-समुद्र) हे गुणों के सागर ! (बुद्ध्या) बुद्धि की अपेक्षा (सुर-गुरु-प्रतिमः अपि) देवों के गुरु बृहस्पति के समान होकर भी (ते) आपके (शशाङ्क-कान्तान् गुणान्) चंद्रमा जैसे मनोहर गुणों को (वक्तुं) कहने के लिए (कः) कौन (क्षमः) समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं। (कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं अम्बु-निधिं) जहाँ प्रलयकालीन आँधी से भड़के हुए घड़ियालों के झुंड विद्यमान हैं, ऐसे समुद्र को (भुजाभ्यां तरीतुं) भुजाओं द्वारा तैरने के लिये (को वा) भला कौन (अलं) समर्थ होगा? कोई भी नहीं।

पद्यानुवाद

हे गुणसागर! शशि-सम सुन्दर तव शुचि गुण-गण का गुण-गान,
कोई कर न सके चाहे वह सुर-गुरु सा भी हो मतिमान्।
प्रलय-पवन से जहाँ कुपित हो घड़ियालों का झुंड महान्,
उस सागर को कैसे कोई भुज-बल से तैर बलवान् ?॥

अन्तर्ध्वनि

हे गुण-सागर ! आपके चंद्रमा-सम रुचिकर गुणों को कहने के लिये कौन समर्थ है, भले ही वह देवताओं के गुरु बृहस्पति-सा बुद्धिमान भी क्यों न हो? क्रुद्ध मगरमच्छों से परिपूर्ण प्रलय-समुद्र को भुजाओं द्वारा कौन पार कर सकता है?

मेरा प्रयत्न भक्ति का चमत्कार है!

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी[1] मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥ 5 ॥

अन्वयार्थ

(तथापि मुनीश) तो भी हे मुनीश। (सोऽहं) वह मैं हूँ, जो (विगत-शक्तिःअपि) शक्ति से रहित होकर भी (तव भक्ति-वशात्) आपकी भक्ति के प्रभाव से (स्तवं कर्तुं) स्तुति करने के लिये (प्रवृत्तः) कटिबद्ध हूँ। (प्रीत्या) स्नेहवश (आत्मवीर्य अविचार्य) अपनी शक्ति का विचार न करके (किं मृगी) क्या हिरणी (निज-शिशोः परिपालनार्थं) अपने बच्चे की रक्षा के लिये (मृगेन्द्रं न अभ्येति) सिंह के सामने नहीं आ जाती?

पद्यानुवाद

तो भी स्वामी! वह मैं हूँ जो तव स्तुति करने को तैयार,
मुझ में कोई शक्ति नहीं पर भक्ति-भाव का है संचार।
निज-बल को जाँचे बिन हिरणी निज शिशु की रक्षा के काज,
प्रबल स्नेह-वश डट जाती है आगे चाहे हो मृगराज ॥

अन्तर्ध्वनि

असंभव कार्य को प्रारंभ करना विवेक-हीनता है, तथापि मैं आपकी स्तुति करने का साहस कर रहा हूँ। हे मुनीश ! अपनी शक्ति की जाँच-पड़ताल किये बिना, क्या हिरणी अपने बच्चे को बचाने के लिए स्नेह के आवेग में सिंह से नहीं भिड़ जाती? मैं भी अपनी भावना को थामने में समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ? आपकी भक्ति का प्रबल वेग ही मुझे उचितानुचित के विवेक से शून्य कर रहा है। मेरी विवशता को आप भी जानते हैं।

1. आवेश- आवेग

1 मृगो

मैं भक्ति से अभिभूत हूँ, इसलिये वाचाल हो रहा हूँ !

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव-मुखरी-कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु[1] ॥ 6 ॥

अन्वयार्थ

(त्वद्भक्तिः एव) आपकी भक्ति ही (मां)मुझ (अल्प-श्रुतं) अल्पज्ञ एवं (श्रुतवतां परिहास-धाम) विद्वानों के हास्य-पात्र को (बलात्) हठ-पूर्वक (मुखरी-कुरुते) बातूनी बना रही है। (मधौ किल) वसन्त ऋतु में ही (कोकिलः) कोयल (यत्मधुरं)जो मीठी (विरौति) उच्च ध्वनि करती है, (तत् च) वह (आम्र-चारु-कलिका- निकरैक-हेतु) केवल आम्र-वृक्षों पर लगे सुन्दर बौरों के गुच्छों के कारण है।

पद्यानुवाद

मन्द-बुद्धि हूँ, विद्वानों का हास्य-पात्र भी हूँ मैं नाथ !
तो भी केवल भक्ति आपकी मुखर कर रही मुझे बलात्।
ऋतु वसंत में कोकिल कूके मधुर-मधुर होती आवाज़,
आम्र-वृक्ष पर बौरों के प्रिय गुच्छों में है उसका राज़॥

अन्तर्ध्वनि

हे भगवन् ! मेरा ज्ञान थोड़ा सा है, अतः विद्वज्जन मुझ पर हँसेंगे, पर क्या करूँ? आपकी भक्ति ही मुझे वाचाल होने को बाध्य कर रही है ! सामान्यतः वर्षा-काल से शीत-काल तक मौन धारण करने वाली कोयल, बसंत ऋतु में आम्र-मंजरियों के कारण कूकने को विवश हो जाती है। यह ठीक भी है, भक्ति से तो भक्त की मन्थर बुद्धि भी आगामी काल में विकसित हो कैवल्यरूप परिणत हो जाती है।

1. तच्चारु -चूत-कलिका-निकरैक-हेतु ॥

आपकी उत्तम स्तुति पापनाशिनी है।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥ 7 ॥

अन्वयार्थ

(शरीरभाजां) देह-धारियों का (भव-सन्तति-सन्निबद्धं) जन्म-परंपरा से दृढ़तापूर्वक बाँधा गया (पापं) पाप, (त्वत्संस्तवेन) आपकी उत्तम स्तुति के द्वारा (क्षणात्) क्षण भर में (आशु सूर्यांशुभिन्नं) सूर्य-किरणों द्वारा तत्काल नष्ट हुए (आक्रान्त-लोकं) जगत-व्यापी तथा (अलि-नीलं) भ्रमर-सम काले (शार्वरं अन्धकारं इव) रात्रि-कालीन अन्धकार के समान (अशेषं) पूर्णतः (क्षयं उपैति) विनाश को प्राप्त हो जाता है।

पद्यानुवाद

निशा-काल का अलि-सम काला जग में फैला तिमिर महान्
प्रातः ज्यों रवि किरणों द्वारा शीघ्रतया करता प्रस्थान।
जन्म-शृखला से जीवों ने बाँधा है जो भीषण पाप,
क्षण भर में तव उत्तम स्तुति से कट जाता वह अपने आप॥

अन्तर्ध्वनि

हे देव ! जैसे अमावस का घना अँधेरा भी प्रभात में सूर्य-किरणों द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार आपकी स्तुति से प्राणियों का अनेक जन्म-संबंधी पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। स्तुति के इस प्रभाव को कौन नकार सकता है? वस्तुतः स्तुति पुण्य-संचय के साथ ही पाप-क्षय में भी अतिशय समर्थ होती है। सिद्धांत-ग्रन्थों द्वारा भी यही तथ्य यत्र-तत्र प्रमाणित होता है, अतः यह कोई अतिशयोक्ति या औपचारिक कथन नहीं है।

यह स्तुति आपकी होने के कारण मनमोहक बनेगी।

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्[1]।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः॥ 8॥

अन्वयार्थ

(इति मत्वा)ऐसा जान कर (नाथ)हे नाथ! (तनु-धिया अपि मया) अल्प-बुद्धि होकर भी मेरे द्वारा (तव) आपकी (इदं संस्तवनं) यह स्तुति (आरभ्यते) प्रारंभ की जाती है, जो (तव प्रभावात्)आपके प्रभाव से (सतां चेतः) सत्पुरुषों के मन को (हरिष्यति) हर लेगी। (ननु) इसमें सन्देह नहीं कि (नलिनी-दलेषु) कमलिनी के पत्तों पर (उद-बिन्दुः) पानी की बूंद (मुक्ता-फल-द्युतिं) मोती की कान्ति को (उपैति) प्राप्त हो जाती है।

पद्यानुवाद

इसीलिये मैं मन्द-बुद्धि भी करूँ नाथ! तव स्तुति प्रारंभ,
तव प्रभाव से चित्त हरेगी सत्पुरुषों का यह अविलंब।
है इसमें संदेह न कोई पत्र कमलिनी पर जिस भाँति,
संगति पाकर आ जाती है जल-कण में मोती-सी कान्ति॥

अन्तर्ध्वनि

मैं मति-मन्द होते हुए भी आपकी स्तुति को पाप-नाशक जान कर प्रारंभ करता हूँ। आपके प्रभाव से यह सर्व-जन-प्रिय बनेगी, शब्द भले ही मेरे रहे आयें। कमलिनी के पत्ते पर पड़ी जल की बूंद मोती-सम जगमगा उठती है ! संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

1. प्रसादात्

आपकी स्तुति क्या?
आपकी तो चर्चा ही पाप-नाशिनी है।

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्त्र-किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥ 9॥

अन्वयार्थ

(अस्त-समस्त-दोषं)नष्ट हो चुके हैं सब दोष जिसके अर्थात् जो निर्दोष है, ऐसी (तव स्तवनं) आपकी स्तुति (आस्तां) दूर रहे, (त्वत्सङ्कथा अपि) आपकी चर्चा भी (जगतां) तीनों जगत के (दुरितानि) पापों को (हन्ति) नष्ट करती है। (सहस्त्र-किरणः दूरे) सूर्य दूर रहा, (प्रभा एव) उसकी किरण ही (पद्माकरेषु) सरोवरों में (जलजानि) कमलों को (विकासभाञ्जि कुरुते) विकसित कर डालती है।

पद्यानुवाद

दूर रहे स्तुति प्रभो! आपकी दोष-रहित गुण की भण्डार,
तीनों जग के पापों का तव चर्चा से ही बंटाढार।
दूर रहा दिनकर पर उसकी अति बलशाली प्रभा विशाल,
विकसित कर देती कमलों को सरोवरों में प्रातःकाल॥

अन्तर्ध्वनि

हे स्वामी! मैं अपने पूर्व-कथन में संशोधन करता हूँ। आपकी निर्दोष स्तुति तो दूर रही, आपकी चर्चा ही सारे जग के पापों का नाश करने वाली है। जब सूर्य की किरण ही सरोवरों में कमलों को प्रफुल्लित करने में समर्थ है, तब सूर्य के प्रभाव का क्या कहना? अतः आपकी स्तुति की महिमा तो निराली ही होनी चाहिये।

आपकी स्तुति तो शरणागत को आपके सदृश बनाने वाली है।

नात्यद्भुतं[1] भुवन-भूषण ! भूत-नाथ !!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्म-समं करोति॥ 10॥

अन्वयार्थ

(भुवन-भूषण भूतनाथ)हे जगत के भूषण ! हे प्राणियों के नाथ !! (भुवि) धरती पर (भूतैः गुणैः) वास्तविक गुणों द्वारा (भवन्तं अभिष्टुवन्तः) आपकी स्तुति करने वाले (ननु) निश्चित रूप से (भवतः तुल्याः) आपके समान (भवन्ति) बन जाते हैं, (अत्यद्भुतं न) यह अधिक आश्चर्यकारी नहीं (वा) तथा (इह) इस विषय में (तेन किं) उससे क्या लाभ, (यः) जो (भूत्या)सम्पत्ति के द्वारा (आश्रितं)शरणागत को (आत्मसमं) अपने जैसा (न करोति) नहीं बना लेता?

पद्यानुवाद

तीनों भुवनों के हे भूषण! और सभी जीवों के नाथ!!
है न अधिक अचरज इसमें जो सत्य-गुणों का लेकर साथ।
तव स्तुति गाता जिनपद पाता इसी धरा पर अपने आप,
जो न कर सके शरणागत को निज-समान उससे क्या लाभ ?॥

अन्तर्ध्वनि

हे जगत-भूषण ! निष्काम भक्ति-पूर्वक यथार्थ गुणों द्वारा की गई आपकी स्तुति भक्त को भगवान बना देती है, यह विशेष विस्मयकारी नहीं, क्योंकि स्तुति का प्रभाव ही ऐसा है। आप वीतराग हैं, अतः किसी का भला बुरा नहीं करते, तथापि आपके गुणों का स्मरण माङ्गलिक है। फिर, हे नाथ ! उस स्वामी के पास जाने से क्या प्रयोजन, जो सेवक को सेवक ही बनाए रखता है? **अरहंत-सरणं पव्वज्जामि।**

1. अत्यद्भुतं

आपकी मुद्रा नेत्रों के लिये परम आनन्दकारी है।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशि-कर-द्युति दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जल-निधे रसितुं क इच्छेत्॥ 11॥

अन्वयार्थ

(अनिमेष-विलोकनीयं)एक-टक दर्शन के योग्य /अपलक-दर्शनीय (भवन्तं दृष्ट्वा) आपको देखकर (जनस्य) मनुष्य की (चक्षुः) आँख (अन्यत्र)अन्य में (तोषं) सन्तोष को (न उपयाति) प्राप्त नहीं होती। (शशि-कर-द्युति)चन्द्र-किरणों जैसी कान्ति है जिसकी, ऐसे (दुग्ध-सिन्धोः पयः) क्षीर-सागर के जल को (पीत्वा) पीकर (जल-निधेः क्षारं जलं) लवण-समुद्र के खारे पानी का (रसितुं) स्वाद लेना (कः इच्छेत्) कौन चाहेगा?

पद्यानुवाद

अपलक दर्शन-योग्य आपके, दर्शन पा दर्शक के नैन,
हो जाते सन्तुष्ट पूर्णतः, अन्य कहीं पाते ना चैन।
चन्द्र-किरण सा धवल मनोहर, क्षीर-सिन्धु का कर जल पान,
खारे सागर के पानी का स्वाद कौन चाहे मतिमान् ?॥

अन्तर्ध्वनि

जिस प्रकार क्षीर-समुद्र का मधुर जल पीकर कोई मनुष्य लवण-समुद्र के खारे जल का स्वाद नहीं लेना चाहता, उसी प्रकार आपके अद्भुत सौन्दर्य-सम्पन्न रूप का दर्शन पाने के पश्चात् मनुष्य की आँखें ऐसी तृप्त होती हैं कि फिर अन्य किसी की झलक भी पाने का भाव नहीं होता ! श्रेष्ठ निधि पाने के पश्चात् अन्य वस्तुएँ आकर्षक कैसे लग सकती हैं?

आपके रूप-लावण्य का रहस्य, रहस्य नहीं रहा।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि-भुवनैक-ललामभूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ 12 ॥

अन्वयार्थ

(त्रि-भुवनैक-ललामभूत) हे त्रिभुवन के अद्वितीय शिरोमणि ! (यैः शान्त-राग-रुचिभिः) जिन शान्त-रस की कान्ति वाले (परमाणुभिः) परमाणुओं द्वारा (त्वं निर्मापितः) आप बनाये गये, (ते अणवः अपि) वे अणु भी (खलु) ठीक (तावन्तः एव) उतने ही थे, (यत्) क्योंकि (पृथिव्यां) धरती पर (ते समानं) आपके जैसा (अपरं रूपं हि) दूसरा रूप ही (न अस्ति) नहीं है।

पद्यानुवाद

हे त्रि-भुवन के अतुल शिरोमणि ! अतुल शान्ति की कान्तिप्रधान,
जिन अणुओं ने रचा आपको, सारे जग में शोभावान।
वे अणु भी बस उतने ही थे, तनिक अधिक ना था परिमाण,
क्योंकि धरा पर रूप दूसरा, है न कहीं भी आप समान॥

अन्तर्ध्वनि

अहो विश्व के रूप-शिरोमणि ! मैं आपके अनुपम सौन्दर्य का रहस्य जान चुका हूँ। शान्ति की कान्ति को प्रदान करने वाले सारे ही दुर्लभ परमाणुओं ने मिलकर आपका रूप बनाया और वे अणु भी उतने ही थे, क्योंकि यदि वे अधिक होते तो आप जैसा सुन्दर कहीं न कहीं कोई और तो दृष्टिगोचर अवश्य होता।

आपका मुख-सौन्दर्य चन्द्रमा को परास्त करनेवाला है।

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥ 13 ॥

अन्वयार्थ

(सुर-नरोरग-नेत्र-हारि) देव, मनुष्य एवं नागकुमारों के नेत्रों को प्रिय लगने वाला तथा (निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानं) पूर्णतः जीत ली हैं तीनों जगत की सौन्दर्य उपमाएँ जिसने, ऐसा (ते) आपका (वक्त्रं क्व) मुख कहाँ? और (कलङ्कमलिनं)कलंक के कारण मलिन (निशाकरस्य बिम्बं क्व) चन्द्रमा का बिम्ब कहाँ, (यत) जो (वासरे) दिन के समय (पाण्डु-पलाश-कल्पं) लगभग ढाक के फीके पत्ते के समान (भवति) हो जाता है?

पद्यानुवाद

सुर-नर-नाग-कुमारों की भी आँखों को तव मुख से प्रीत,
जिसने जग की सारी सुन्दर-सुन्दर उपमाएँ ली जीत।
और कहाँ चन्दा बेचारा जो नित धारण करे कलंक?
दिन में ढाक-पत्र सा निष्प्रभ, होकर लगता पूरा रंक॥

अन्तर्ध्वनि

हे सौन्दर्य-सिन्धु ! संसार में जिसकी कोई उपमा नहीं और जो देव, मनुष्य एवं नागकुमार सबकी आँखों को अत्यन्त प्रिय है, ऐसा तो है आपका सुन्दर मुख, और कलंक से मलिन बेचारा चन्द्र-बिम्ब कहाँ, जो दिन में निस्तेज होकर फीके ढाक-पत्र सा जान पड़ता है? अतः कलम के धनियों की परम्परा निभाने के लिये मैं आपके मुख को चन्द्रमा कैसे कह दूँ ?

आपकी यश: कीर्ति अनिरुद्ध है!

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रि-भुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रि-जगदीश्वर[1]-नाथमेकं,
कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम्॥ 14॥

अन्वयार्थ

(सम्पूर्ण-मण्डल- शशांङ्क-कला-कलाप-शुभ्रा:) जो पूर्ण गोलाकार चन्द्रमा की कलाओं के समूह जैसे उज्ज्वल हैं, ऐसे (तव गुणा:) आपके गुण (त्रि-भुवनं) तीनों जगत को (लङ्घयन्ति) लांघ रहे हैं। (ये) जो (एकं) एक अद्वितीय (त्रिजगदीश्वर-नाथं) तीनों जगत के स्वामियों के स्वामी के (संश्रिता:) आश्रय को प्राप्त हैं, (यथेष्टं सञ्चरत: तान्) इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले उन्हें (क: निवारयति)कौन रोक सकता है?

पद्यानुवाद

पूर्ण-चन्द्र के कला-वृन्द सम धवल आपके गुण सब ओर,
व्याप्त हो रहे हैं इस जग में उनके यश का कहीं न छोर।
ठीक बात है जो त्रि-भुवन के स्वामी के स्वामी के दास,
मुक्त विचरते उन्हें रोकने कौन साहसी आता पास ?॥

अन्तर्ध्वनि

हे यशस्विन्! आपका पूर्ण-चन्द्र सा धवल सुयश विश्वव्यापी हो रहा है, जो उचित भी है। जब एक सामान्य राजदूत भी सम्मान-पूर्वक सर्वत्र भ्रमण करता है, तब इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों के स्वामी के गुणों का यथेष्ट संचार कौन रोके? आपकी ज्ञान-कला की चरम-सीमा ही अनन्त-सुख है तथा आप अनन्त-शक्ति के पुंज हैं। ऐसे गुणों का यश जगत भर में निर्बाध संचार कर रहा है। जब आपका भक्त निर्द्वन्द्व विचरता है, तब आपका यश तो यश ही है।

1. संश्रितास्त्रिजगदीश्वर!

आपके चित्त को विकार कैसे छू सकते हैं ?

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्॥ 15॥

अन्वयार्थ

(यदि ते मन:)यदि आपका मन (त्रिदशाङ्गनाभि:) देवांगनाओं/अप्सराओं द्वारा (मनाक् अपि) तनिक भी (विकार-मार्गं) विकार-मार्ग पर (न नीतं)नहीं ले जाया गया, तो (अत्र चित्रं किं) इसमें आश्चर्य क्या? (चलिताचलेन कल्पान्त-काल-मरुता) पहाड़ों को चलायमान करने वाली प्रलयकालीन आँधी से (किं कदाचित्) क्या कभी (मन्दराद्रिशिखरं चलितं) सुमेरु पर्वत का शिखर चलायमान हुआ है?

पद्यानुवाद

यदि सुरांगनाएँ तव मन में नहीं ला सकीं तनिक विकार,
तो इसमें अचरज कैसा? प्रभु! स्वयं उन्हीं ने मानी हार।
गिरि को कंपित करने वाला प्रलयकाल का झंझावात,
कभी डिगा पाया क्या अब तक मेरु-शिखर को जग-विख्यात ?॥

अन्तर्ध्वनि

हे ब्रह्मलीन इन्द्रियजयी! क्या प्रलय-कालीन आँधी सुमेरु पर्वत को डिगा सकती है? फिर यदि अप्सराएँ आपको तपश्चरण से तनिक भी विचलित न कर पायीं, तो आश्चर्य कैसा? ब्रह्मस्वरूप आत्मा के आनन्द का आस्वादन करने पर विषय-वासना को अवकाश कहाँ? पवित्र हृदय में दुर्भावना कैसी? आप तो वैराग्य और तत्त्व-ज्ञान की साक्षात् मूर्ति हैं, साधुत्व की पराकाष्ठा है, अत: आपका करुणामय विश्व-प्रेम भी नि:स्वार्थ होने के कारण बिलकुल निष्कलंक है।

आप विलक्षण ज्योतिर्मय दीपक हैं।

निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूरः[1],
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः॥ 16॥

अन्वयार्थ

(निर्धूम-वर्तिः)जिसमें धुँआ एवं बत्ती नहीं तथा (अपवर्जित-तैल-पूरः) तेल नहीं भरना पड़ता, ऐसे आप (इदं कृत्स्नं जगत्त्रयं) इस समूचे त्रिभुवन को (प्रकटीकरोषि) प्रकट प्रकाशमान करते हैं। आप (जातु) कभी (चलिताचलानां मरुतां) पर्वतों को हिला डालने वाली हवाओं के (गम्यः न)प्रभाव में आने योग्य नहीं, अतः (नाथ) हे नाथ ! (जगत्प्रकाशः त्वं) विश्व में है प्रकाश जिसका, ऐसे आप (अपरः दीपः असि) अद्वितीय दीपक हैं।

पद्यानुवाद

प्रभो ! आपमें धुँआ न बत्ती और तेल का भी ना पूर,
तो भी इस सारे त्रि-भुवन को आभा से करते भरपूर।
बुझा न सकती विकट हवाएँ जिनसे गिरि भी जाते काँप,
अतः जिनेश्वर ! जगत-प्रकाशक अद्वितीय दीपक हैं आप॥

अन्तर्ध्वनि

अहो नाथ ! आप कोई विलक्षण दीपक हैं, क्योंकि आप धुआँ , बत्ती एवं तेल से रहित होकर भी समस्त विश्व को अपनी कैवल्य-ज्योति से प्रकाशित करते हैं तथा भीषणतम तूफान भी आपको बुझा नहीं सकता।

1. निर्धूम-वर्तिरपि वर्जित-तैल-पूरः

आपके सम्मुख सूर्य भी निस्तेज है !

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके॥ 17॥

अन्वयार्थ

आप (न कदाचित्)न कभी (अस्तं उपयासि) अस्त को प्राप्त होते हैं, (न राहु-गम्यः) न राहु के निगलने योग्य / ग्रहण लगने योग्य हैं। (युगपत्) एक साथ (जगन्ति) तीनों जगत् को (सहसा) अनायस ही (स्पष्टीकरोषि) प्रकाशित करते है, तथा (नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः) बादलों के भीतर रुक गया है महान तेज जिसका, ऐसे नहीं हैं, अतः (मुनीन्द्र) हे मुनीन्द्र ! (लोके) लोक में, आप (सूर्यातिशायि-महिमा असि) सूर्य से भी बढ़कर महिमावान् हैं।

पद्यानुवाद

अस्त आपका कभी न होता राहु बना सकता ना ग्रास,
एक साथ सहसा त्रि-भुवन में बिखरा देते आप प्रकाश।
छिपे न बादल के भीतर भी हे मुनीन्द्र ! तव महाप्रताप,
अतः जगत में रवि से बढ़कर महिमा के धारी हैं आप॥

अन्तर्ध्वनि

हे मुनीन्द्र ! इस लोक में आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है, क्योंकि सूर्य की भांति आप कभी अस्त नहीं होते, आप पर ग्रहण नहीं लगता, न बादल छाते हैं, और आपका ज्ञान-तेज इतना अधिक है कि उससे तीनों लोक एकसाथ प्रकाशित हो उठते हैं !

आपके मुख को एक अनोखा चन्द्रमण्डल कहा जा सकता है।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥ 18॥

अन्वयार्थ

(नित्योदयं) जिसका उदय स्थायी है, (दलित-मोह-महान्धकारं) जिसने मोहरूपी महान अन्धकार का विनाश कर दिया है, (न राहु-वदनस्य) जो न राहु-मुख की (गम्यं) पहुँच में आने योग्य है, (न वारिदानां) न बादलों की, तथा (जगत् विद्योतयत्) जो जगत को प्रकाशित करने वाला है, ऐसा (तव) आपका (अनल्प-कान्ति मुखाब्जं) महातेजस्वी मुखारविन्द (अपूर्व-शशाङ्क-बिम्वं) अभूतपूर्वअद्भुत चन्द्र-मण्डलरूप (विभ्राजते) सुशोभित होता है।

पद्यानुवाद

रहता है जो उदित हमेशा मोह-तिमिर को करता नष्ट,
जो न राहु के मुख में जाता बादल देते जिसे न कष्ट।
तेजस्वीमुख-कमल आपका एक अनोखे चन्द्र समान,
करता हुआ प्रकाशित जग को शोभा पाता प्रभो! महान॥

अन्तर्ध्वनि

हे नाथ! यदि मैं आपके मुख-कमल को अभूतपूर्व चन्द्र-मंडल कहूँ तो यह आपत्ति-जनक न होगा, क्योंकि सर्वदा उदित रहने वाला, प्राणियों के अन्तरंग मोह-तिमिर का विनाशक, राहु एवं बादलों से अप्रभावित और जगत् को प्रकाशित करने वाला आपका महातेजस्वी मुख सचमुच ही एक अनोखे चन्द्रमा-सा शोभित हो रहा है।

आपके तेज से सूर्य-चन्द्रमा दोनों प्रभावहीन हो गये!

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जल-धरैर्जल-भार-नम्रैः॥ 19॥

अन्वयार्थ

(युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु) आपके मुख-चन्द्र द्वारा सर्व-अन्धकारों का नाश हो जाने पर (नाथ) हे नाथ! (शर्वरीषु शशिना) रात्रियों में चंद्रमा (वा) और (अह्नि विवस्वता) दिन में सूर्य से (किं) क्या लाभ है? (निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके) पकी हुई शालि-धान्य की फसल से सुशोभित धरती पर (जल-भार-नम्रैः जल-धरैः) पानी के भार से झुके हुए बादलों से (कियत् कार्यं) कितना काम निकलता है?

पद्यानुवाद

विभो! आपके मुख-शशि से जब, अन्धकार का रहा न नाम,
दिन में दिनकर, निशि में शशि का, फिर इस जग में है क्या काम?॥
शालि-धान्य की पकी फसल से, शोभित धरती पर अभिराम,
जल-पूरित भारी मेघों का, रह जाता फिर कितना काम?॥

अन्तर्ध्वनि

हे नाथ! जब आपके मुखरूपी अद्भुत चन्द्रमा ने सभी तिमिरों को हटा दिया, तब सूर्य एवं चन्द्रमा तो स्वयमेव महत्त्वहीन हो गये। फसल पकने के पश्चात् बरसने वाले बादलों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?

आपका ज्ञान निरपेक्ष है,
जबकि शेष प्रभुओं का सापेक्ष।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु[1] याति यथा महत्त्वं,
नैवं[2] तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि॥ 20॥

अन्वयार्थ

(यथा) जिस प्रकार (कृतावकाशं ज्ञानं) सर्वत्र अवकाश को प्राप्त ज्ञान (त्वयि) आपके भीतर (विभाति) सुशोभित होता है, (तथा एवं) उस प्रकार (हरि-हरादिषु) हरि-हर आदि (नायकेषु) गणमान्यों में (न) नहीं होता। (यथा)जिस प्रकार (स्फुरन्मणिषु) झिलमिलाती मणियों में (तेजः) प्रकाश (महत्त्वं याति)महत्त्व को प्राप्त होता है, (एवं तु) वैसा तो (किरणाकुले अपि काच-शकले) किरणों से भरपूर भी काँच-खंड में (न) नहीं होता।

पद्यानुवाद

ज्यों तुममें प्रभु ! शोभा पाता जगत-प्रकाशक केवलज्ञान,
त्यों हरि-हर-आदिक प्रभुओं में, होता ज्ञान न आप समान।
ज्यों झिलमिल मणियों में पाता तेज स्वयं ही सहज निखार,
काँच-खंड में आ न सके वह हो रवि-किरणों का संचार॥

अन्तर्ध्वनि

हे वीतराग-सर्वज्ञ-जिनेन्द्र ! आपका सर्व-व्यापी ज्ञान झिलमिलाती मणियों के तेजसम सहज है, जिसमें स्वयमेव-इच्छा और प्रयत्न के बिना ही सभी पदार्थ अपनी त्रिकालवर्ती सर्व अवस्थाओं के साथ युगपत् झलकते हैं। अन्तिम भव में, जब वीतरागता अपनी पराकाष्ठा का स्पर्श करती है, केवलज्ञान होता है। इसी कारण आगामी अवतार धारण करनेवाले हरि-हर आदि प्रभुओं में कैवल्य का अभाव है। केवलियों के अतिरिक्त सभी ज्ञानियों का ज्ञान सापेक्ष होने के कारण सूर्य-किरणों से प्रकाशित काँचखण्ड की छटा को धारण करता है।

1. तेजो महामणिषु 2 काचोद्भवेषु न तथैव विकासकत्वम्॥

आपके दर्शन से केवल नेत्र ही नहीं,
हृदय भी तृप्त हो जाता है।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि॥ 21॥

अन्वयार्थ

(मन्ये) मैं समझता हूँ कि (दृष्टाः हरि-हरादयः एव) देखे गये हरि-हर आदि ही (वरं) अधिक अच्छे हैं (येषु दृष्टेषु) जिनके देखे जाने पर (हृदयं) हृदय(त्वयि) आपमें (तोषं एति) सन्तोष को प्राप्त होता है। (नाथ) हे नाथ! (वीक्षितेन भवता) दृष्टिगोचर हुए आपसे (किं) क्या लाभ है, (येन) जिससे (भवान्तरे अपि) पर -जन्म में भी (भुवि) धरती पर (कश्चित् अन्यः) कोई दूसरा (मनः) मन को (न हरति) नहीं हरता?

पद्यानुवाद

हरि-हरादि को ही मैं सचमुच, उत्तम समझ रहा जिनराज !
जिन्हें देखकर हृदय आपमें आनन्दित होता है आज।
नाथ ! आपके दर्शन से क्या? जिसको पा लेने के बाद,
अगले भव में भी ना कोई मन भाता ना आता याद॥

अन्तर्ध्वनि

प्रत्येक अवतार में नवीनता धारण करनेवाले हरि-हरादि अधिक उत्तम हैं जिनके दर्शनोपरांत दर्शन की कड़ी बनी रहती है, ऐसा मैं समझता हूँ, लेकिन आपके दर्शन से हृदय ऐसा मुग्ध हो जाता है कि आगामी जन्म में भी बस आपकी ही लौ लगी रहती है। जिनदर्शन से निजदर्शन की यात्रा स्वतः सम्पन्न होती है और संसार-भ्रमण को विराम मिल जाता है। चित्त किसी की ओर आकृष्ट नहीं होता। तथा आपका भक्त सबके दर्शन से विमुख हो जाता है, आपमें ही लीन होकर अपने आप में विलीन हो जाता है।

यह जगत, माता मरुदेवी को कैसे भुला सकता है?

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा-
न्नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम्॥ 22॥

अन्वयार्थ

(स्त्रीणां शतानि) मातृजनों के शतक (शतशः) सैकड़ों बार (पुत्रान्) पुत्रों को (जनयन्ति) उत्पन्न करते हैं, पर (त्वदुपमं सुतं) आप-जैसे पुत्र को (प्रसूता जननी) जन्म देनेवाली माता (अन्या न)अन्य नहीं, किन्तु एक मरुदेवी ही हुई। (सर्वाः दिशः) सभी दिशाएँ (भानि) नक्षत्रों को (दधति)धारण करती हैं, पर (स्फुरदंशु-जालं) जिसमें से किरणों का समूह प्रस्फुटित हो रहा है, ऐसे (सहस्त्र-रश्मिं) सूर्य को (प्राची दिक् एव) पूर्व दिशा ही (जनयति) जन्म देती है।

पद्यानुवाद

जनती हैं शत-शत माताएँ शत-शत बार पुत्र गुणवान्
पर तुम जैसे सुत की माता हुई न जग में अन्य महान्।
सर्व दिशाएँ धरें सर्वदा ग्रह-तारा-नक्षत्र अनेक,
पर प्रकाश के पुंज सूर्य को पूर्व दिशा ही जनती एक॥

अन्तर्ध्वनि

हे वृषभ तीर्थंकर! आप-जैसे अनुपम पुत्र की माता सारे संसार में एक ही हुई है- माता मरुदेवी। आपकी जननी का शरीर रजोधर्म तथा मल-मूत्र से रहित था। आपके गर्भस्थ रहते हुए भी वे शारीरिक-परिवर्तनों से रहित थीं तथा गर्भ-शोधनादि सेवाएँ देवियाँ स्वयं करती थीं। वेद-पुराणों ने आपको आदि-ब्रह्मा माना तथा आप ही धर्म-कर्म के आद्य प्रवर्तक हुए। यह ठीक है कि प्रकाशमान नक्षत्रों-जैसे धुरन्धर पुत्रों को भी कई माताओं ने उत्पन्न किया, लेकिन सूर्य-सम तेजस्वी आपको जन्म देनेवाली माता मरुदेवीरूपी पूर्व-दिशा के अतिरिक्त कौन हो सकती थी?

आपकी उपलब्धि से मोक्षमार्ग मिला।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस[1]-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्[2]।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥ 23॥

अन्वयार्थ

(मुनयः) मुनिजन (त्वां) आपको (परमं पुमांसं) परम-पुरुष एवं (तमसः पुरस्तात्)अन्धकार के सन्मुख (अमलं) उज्ज्वल (आदित्य-वर्णं) सूर्यरूप (आमनन्ति) मानते हैं। वे (त्वां एव)आप ही को (सम्यक्) अच्छी तरह (उपलभ्य) उपलब्ध करके (मृत्युं) मृत्यु को (जयन्ति) जीतते हैं। (मुनीन्द्र)हे मुनीन्द्र! (शिव-पदस्य) मोक्ष का (अन्यः शिवः) दूसरा कल्याणकारी (पन्थाः न) मार्ग नहीं है।

पद्यानुवाद

सभी मुनीश्वर यही मानते, परम-पुरुष हैं आप महान्
और तिमिर के सन्मुख स्वामी! हैं उज्ज्वल आदित्य-समान।
एक आपको सम्यक् पाकर मृत्युंजय बनते वे संत,
नहीं दूसरा है कोई भी मोक्षपुरी का मंगल पंथ॥

अन्तर्ध्वनि

हे मुनीन्द्र! ज्ञानी-ध्यानी मुनिजन आपको ही परम-पुरुष/परमात्मा तथा अन्तरंग-बहिरंग तिमिर को दूर करनेवाला उज्ज्वल सूर्य मानते हैं। जैसे द्रव्य, गुण एवं पर्यायरूप से आपको समझनेवाला जीव, आत्मज्ञान को प्राप्त करता है, वैसे ही दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र में आपको अंगीकार करनेवाले मुनिराज मोक्ष को प्राप्त करते हैं, अर्थात् मृत्युंजय बनते हैं। मुझे तो इसके अतिरिक्त मुक्ति का कोई अन्य मंगल-पथ नहीं दीखता। आपको हृदय में धारण करनेवाला मनुष्य मृत्यु के भय को तत्काल जीत लेता है।

1. पवित्र - 2 परस्तात्

आपकी सभी संज्ञाएँ सार्थक हैं।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग-केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं,
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥ 24॥

अन्वयार्थ

(सन्तः) सत्पुरुष (त्वां) आपको (अव्ययं) अव्यय, (विभुं) विभु, (अचिन्त्यं) अचिन्त्य, (असंख्यं) असंख्य, (आद्यं) आद्य, (ब्रह्माणं)ब्रह्मा, (ईश्वरं) ईश्वर, (अनन्तं) अनंत, (अनङ्ग-केतुं)अनंग-केतु, (योगीश्वरं) योगीश्वर, (विदित-योगं) विदित-योग, (अनेकं)अनेक,(एकं) एक, (ज्ञान-स्वरूपं) ज्ञान-स्वरूप एवं (अमलं) अमल (प्रवदन्ति) पुकारते हैं।

पद्यानुवाद

अव्यय, विभु, अचिन्त्य, संख्या से परे, आद्य-अरहंत महान्,
जगब्रह्मा, ईश्वर, अनंत-गुण, मदन विनाशक अग्नि-समान।
योगीश्वर, विख्यात ध्यानधर, जिन! अनेक होकर भी एक,
ज्ञान-स्वरूपी और अमल भी तुम्हें संतजन कहते नेक॥

अन्तर्ध्वनि

सन्तजन कारणवश आपको यह पन्द्रह संज्ञाएँ देते हैं। आप परमात्म-स्वरूप का विनाश न होने से **'अव्यय'**, समर्थ होने से **'विभु'**, मन द्वारा चिन्तन के अगोचर होने से **'अचिन्त्य,'** वचन द्वारा कथन के अगोचर होने से **'असंख्य'**, प्रथम तीर्थंकर होने से **'आद्य'**,कर्मभूमि के सृष्टिकर्ता होने से अथवा ब्रह्मानंद में लीन होने से **'ब्रह्मा'**,उत्कृष्ट ऐश्वर्य-संपन्न होने से **'ईश्वर'**, अनंत चतुष्टय के धारक होने से **'अनन्त'**,अग्नि के समान काम को भस्म करने से **'अनंग-केतु'**,योगियों के स्वामी होने से **'योगीश्वर'**, विख्यात ध्यान-धारी होने से **'विदित-योग'**, नित्यानित्यादि अनेक-रूप होने से **'अनेक'**,अद्वितीय होने से **'एक'**,ज्ञान-स्वभावी होने से **'ज्ञान-स्वरूप'** तथा घातिया कर्मरूपी पाप-मल से रहित होने से **'अमल'** कहलाते हैं, अतः आप यथानाम तथागुण हैं।

आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश व बुद्ध हैं।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधा-
त्त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥ 25॥

अन्वयार्थ

(विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्) देवों, विद्वज्जनों के द्वारा पूजित-बुद्धि का विकास होने से (त्वं एव) आप ही (बुद्धः) बुद्ध हैं। (भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्)तीनों जगत् के लिये आनन्दकारी होने से (त्वं) आप (शङ्करः असि) शंकर हैं। (धीर)हे धीर ! (शिव-मार्ग-विधेः)मोक्षमार्ग का अनुष्ठान (विधानात्)करने से (धाता असि)आप धाता-ब्रह्मा हैं। (भगवन्) हे भगवन्! (त्वं एव) आप ही (व्यक्तं)स्पष्टतः (पुरुषोत्तमः असि) पुरुषोत्तम-नारायण हैं।

पद्यानुवाद

तुम्हीं बुद्ध हो क्योंकि सुरों से, पूजित है तव केवलज्ञान,
तुम्हीं महेश्वर शंकर जग को, करते हो आनन्द प्रदान।
तुम्हीं धीर! हो ब्रह्मा आतम-हित की विधि का किया विधान,
तुम्हीं प्रगट पुरुषोत्तम भी हो हे भगवन्! अतिशय गुणवान॥

अन्तर्ध्वनि

हे धीर-वीर भगवन्! आप ही देवों द्वारा पूजित बुद्धि-बोध अर्थात् ज्ञान के विकास वाले बुद्ध हैं, जगत् को आनंदित करनेवाले शंकर हैं, विधि का अर्थात् मोक्षमार्ग का विधान करनेवाले विधाता ब्रह्मा हैं तथा स्पष्टतः पुरुषोत्तम नारायण हैं। मुझे अपने आराध्य में सभी के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं।

हे प्रभो ! मेरा मस्तक अनायास नम्रीभूत हो रहा है।

तुभ्यं नमस्त्रि-भुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षिति - तलामल- भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रि- जगतः[1] परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥ 26 ॥

अन्वयार्थ

(नाथ) हे नाथ !(त्रि-भुवनार्ति-हराय) तीनों जगत की पीड़ा को हरने वाले (तुभ्यं नमः) आपके लिये नमन हो। (क्षिति-तलामल-भूषणाय) पृथ्वीतल के उज्ज्वल भूषण-स्वरूप (तुभ्यं नमः) आपके लिये नमन हो। (त्रि-जगतः परमेश्वराय) तीनों जगत के परमेश्वर (तुभ्यं नमः) आपके लिये नमन हो। तथा (जिन)हे जिन। (भवोदधि-शोषणाय) संसाररूपी समुद्र को सुखाने वाले (तुभ्यं नमः) आपके लिये नमन हो।

पद्यानुवाद

दुखहर्ता हे नाथ ! त्रि-जग के, नमन आपको करूँ सदैव,
वसुन्धरा के उज्ज्वल भूषण नमन आपको करूँ सदैव।
तीनों भुवनों के परमेश्वर, नमन आपको करूँ सदैव,
भव-सागर के शोषक हे जिन ! नमन आपको करूँ सदैव॥

अन्तर्ध्वनि

हे जिनेन्द्र ! अब मैं अधिक क्या कहूँ? जग की पीड़ा को हरने वाले, भूतल के जगमगाते भूषण, त्रिलोक के परमेश्वर तथा भव-सागर के शोषणकर्ता आपके लिये कोटिशः नमन हो। आपकी उपस्थिति दुर्भिक्षादि का निवारण करती है, आपकी वाणी जगत-कल्याणी है, आपकी स्तुति पाप-नाशिनी एवं भगवत्पददात्री है, आपकी पूजा पूजक को पूज्य बनाने वाली है, आपकी वाणी भव से पार लगानेवाली है, आपका नाम-स्मरण विघ्न-विनाशक है, और आपकी शरण सर्व-मंगल-दायिनी है, अतः आप दुःखहर्ता हैं, इसे कौन नकारेगा? कर्मविजेता को जिन कहते हैं। आपने अपने भव-समुद्र को रत्नत्रय से ही सुखाया है।

1 त्रि-जगती

आप सर्व-गुण-संपन्न व सर्व-दोष-निर्मुक्त हैं।

को विस्मयोऽत्र[1] यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥ 27 ॥

अन्वयार्थ

(मुनीश) हे मुनीश !(यदि नाम) यदि वास्तव में (निरवकाशतया) स्थान का अभाव होने के कारण (अशेषैः गुणैः) सभी गुणों द्वारा (त्वं संश्रितः) आप आश्रय बनाये गये हैं तथा (उपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैःदोषैः) स्वीकार किये हुए नाना आश्रयों से जिन्हें गर्व उत्पन्न हुआ है, ऐसे दोषों के द्वारा (कदाचित् अपि)कभी (स्वप्नान्तरे अपि)स्वप्न में भी (न ईक्षितः असि) नहीं देखे गये हैं, तो (अत्र) इसमें (कः विस्मयः) कौन-सा आश्चर्य है?

पद्यानुवाद

इसमें क्या आश्चर्य मुनीश्वर ! मिला न जब कोई आवास,
तब पाकर तव शरण सभी गुण बने आपके सच्चे दास।
अपने-अपने विविध घरों में रहने का था जिन्हें घमंड,
कभी स्वप्न में भी तव दर्शन कर न सके वे दोष प्रचंड॥

अन्तर्ध्वनि

हे सर्व-गुण-निधान ! अन्यत्र ठिकाना न मिलने से क्षमा, सन्तोषादि सब गुण आपकी शरण में चले आये, लेकिन जिनके विविध निजी निवास थे उन अभिमानी दोषों ने शरण लेना तो दूर, कभी स्वप्न में भी आपकी ओर नहीं देखा। यह आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि जब अपना घर नहीं होता, तब योग्य आश्रय ढूंढा जाता है। तात्पर्य यह है कि आप समस्त गुणों के एकमात्र आश्रय हैं तथा समस्त दोषों से सर्वथा दूर हैं। इसी प्रकार आपके गुणानुवाद से भक्त गुणों से मण्डित और दोषों से दूर हो जाता है, यह भी आश्चर्यकारी नहीं।

1 चित्रं किमत्र

आप अष्ट-प्रातिहार्य-मंडित तीर्थंकर हैं। विशाल अशोक-वृक्ष के नीचे आप कैसे लगते हैं ?

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमोवितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥ 28 ॥

अन्वयार्थ

(उच्चैरशोक-तरु-संश्रितं) ऊँचे अशोक-तरु के तले विराजमान तथा (उन्मयूखं)ऊपर को उठती किरणों से युक्त (भवतः) आपका (अमलं रूपं) निर्विकार रूप (स्पष्टोल्लसत्किरणं) जिसकी किरणें स्पष्टतः शोभायमान हैं और (अस्त-तमोवितानं) जिसने अन्धकार के विस्तार को समाप्त कर दिया है, ऐसे (पयोधर-पार्श्ववर्ति) बादल के निकटवर्ती (रवेः बिम्बं इव) सूर्य के बिम्ब की भाँति (नितान्तं आभाति) अत्यन्त सुन्दर लगता है।

पद्यानुवाद

ऊँचे तरु अशोक के नीचे नाथ विराजे आभावान,
रूप आपका सबको भाता निर्विकार शोभा की खान।
ज्यों बादल के निकट सुहाता बिम्ब सूर्य का तेजोधाम,
प्रगट बिखरती किरणों वाला विस्तृत-तम-नाशक-अभिराम॥

अन्तर्ध्वनि

हे पूज्य! अपने शरीर के द्वादश-गुणित ऊँचे अशोक-वृक्ष के नीचे विराजमान आप ऐसे मनोहर प्रतीत हो रहे हैं जैसे बादल के पास स्थित तिमिर-ध्वंसी प्रकाश-पुंज सूर्य। हे तीर्थंकर ! जिस वृक्ष के नीचे आप केवलज्ञानी हुए उसी का प्रतिरूप यह प्रातिहार्य है, जो दिव्य एवं छायादार है। जब आपका यह प्रातिहार्य वृक्ष भी 'अशोक' है तब क्या आपकी शरण लेनेवाला 'अशोक' अर्थात् शोकमुक्त न होगा?

आप सिंहासन पर अधर विराजमान हैं।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशु-लता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥ 29 ॥

अन्वयार्थ

(मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे सिंहासन) मणियों की किरण-शिखाओं से जो रंग-बिरंगे हैं, ऐसे सिंहासन पर (तवकनकावदातं वपुः) आपका स्वर्ण-जैसा पीला शरीर (तुङ्गोदयाद्रि-शिरसि)ऊँचे उदय-पर्वत के शिखर पर (वियद्विलसदंशु-लता-वितानं) आकाश में शोभायमान किरणरूप लताओं के विस्तार से युक्त (सहस्र-रश्मेः बिम्बं इव) सूर्य के बिम्ब की भाँति (विभ्राजते)सुशोभित होता है।

पद्यानुवाद

मणि-किरणों से रंग-बिरंगे सिंहासन पर निःसंदेह,
अपनी दिव्य छटा बिखराती तव कंचन-सम पीली देह।
नभ में फैल रहा है जिसकी किरण-लताओं का विस्तार,
ऐसा रवि ही मानो प्रातः उदयाचल पर हो अविकार॥

अन्तर्ध्वनि

मणियों की रंग-बिरंगी किरणों से शोभित सिंहासन पर समारूढ़ आपका स्वर्ण-सम पीत शरीर उदयाचल के ऊपर आकाश में किरणों को बिखराते हुए उदीयमान सूर्य के जैसा सुन्दर लगता है। आपका स्थान संसार में सर्वोपरि है। हे त्रिलोक-शिरोमणि ! केवलज्ञान होने पर आप भूमि से 5000 धनुष ऊपर समासीन हुए और सिंहासन से भी 4 अंगुल ऊपर विराजे हैं।

आपके दोनों ओर धवल-चँवर शोभायमान हैं।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुर-गिरेरिव शातकौम्भम्॥ 30॥

अन्वयार्थ

दोनों ओर (कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं) कुन्दपुष्प-सम-श्वेत ढुरते हुए चँवरों से मनोहर है शोभा जिसकी, ऐसा (तव कलधौत-कान्तं वपुः) आपका स्वर्ण-जैसा मनोहर शरीर, (उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झर-वारि-धारं) जिससे चन्द्रमा-सम उज्ज्वल झरनों की जल-धाराएँ निकल रही हैं, ऐसे (सुर-गिरेः) सुमेरु पर्वत के (शातकौम्भं) स्वर्णमय (उच्चैस्तटं इव) ऊँचे तट के समान (विभ्राजते) सुशोभित होता है।

पद्यानुवाद

कुन्द-सुमन-सम धवल सुचंचल चौंसठ चँवरों से अभिराम,
कंचन जैसा तव सुन्दर तन बहुत सुहाता है गुणधाम।
चन्दा-सम उज्ज्वल झरनों की बहती धाराओं से युक्त,
मानों सुर-गिरि का कंचनमय ऊँचा तट हो दूषण-मुक्त॥

अन्तर्ध्वनि

अहो चँवर-प्रातिहार्य-मण्डित जिनेन्द्रदेव! जिसके दोनों ओर कुंद-पुष्प-सम श्वेत ६४ चँवर ढुराये जा रहे हैं, ऐसा आपका ५०० धनुष ऊँचा स्वर्ण-सम मनोहर शरीर इस तरह शोभित होता है, जैसा आपके ही जन्माभिषेक काल में श्वेत झरनों की जल-धाराओं से मनोरम सुमेरु-पर्वत के उन्नत स्वर्णिम तट हो। आपके ऐसे भव्य रूप के स्मरणमात्र से विकृतियाँ स्तंभित हो जाती हैं!

आपके शिरोभाग से कुछ ऊपर छत्र-त्रय प्रातिहार्य है।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्[1]।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रि-जगतः[2] परमेश्वरत्वम्॥ 31॥

अन्वयार्थ

(शशाङ्क-कान्तं) चन्द्रमा-सम मनोहर, (उच्चैः-स्थितं) ऊपर अवस्थित, (स्थगित-भानु-कर-प्रतापं) रवि-किरणों के ताप को रोकनेवाला और (मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं) मोतियों के गुच्छों द्वारा निर्मित जाल के कारण बढ़ी हुई शोभा का धारी (छत्र-त्रयं) तीन-छत्र प्रातिहार्य (त्रि-जगतः) तीनों जगत संबंधी (तव परमेश्वरत्वं प्रख्यापयत्) आपकी परमेश्वरता को प्रकट करता हुआ (विभाति) सुशोभित होता है।

पद्यानुवाद

दिव्य मोतियों के गुच्छों की रचना से अति शोभावान,
रवि-किरणों का घाम रोकता लगता शशि जैसा मनभान।
आप तीन जग के प्रभुवर हैं, ऐसा जो करता विख्यात,
छत्र-त्रय तव ऊपर रहकर शोभित होता है दिन-रात॥

अन्तर्ध्वनि

हे त्रिलोकी-नाथ! आपके शिरोभाग के कुछ ऊपर चन्द्रमा जैसे शुभ्र एवं मनोहर, तथा दिव्य मोतियों की विशिष्ट रचना के कारण अत्यधिक सुन्दर तीन छत्र, आपको त्रि-भुवन का परमेश्वर प्रकट करते हुए शोभायमान हैं। आप धरणेन्द्र, चक्रवर्ती एवं इन्द्र के स्वामी हैं, यही ये सूचित कर रहे हैं।

1. स्थगित-भानु-कर-प्रभावम् 2. त्रिजगती

आपके समागम का प्रचारक दुन्दुभि प्रातिहार्य है।

गंभीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ[1]-सङ्गम-भूति[2]-दक्षः।
सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति[3] ते यशसः प्रवादी॥ 32॥

अन्वयार्थ

(गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागः)गंभीर उच्च-ध्वनि से जिसने दिशा-विभाग को गुंजायमान कर दिया है तथा (त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः)त्रिलोकवर्ती प्राणियों को सत्संग का लाभ हो, इस विषय में जो निपुण है, ऐसा (ते यशसः प्रवादी)आपके यश का प्रवक्ता (दुन्दुभिः)दुन्दुभि बाजा (सद्धर्म-राज-जय-घोषण-घोषकः सन्)उपस्थित यमराज पर आपकी जयघोषणा का उद्घोषक होता हुआ (खे)आकाश में (ध्वनति) ध्वनि करता है।

पद्यानुवाद

गूँज उठा है दिशा-भाग पा जिसकी ऊँची ध्वनि गंभीर,
जग में सबको हो सत्संगम इसमें जो पटु और अधीर।
कालजयी का जय-घोषक बन नभ में बजता दुन्दुभि-वाद्य,
यशोगान नित करे आपका जय-जय-जय तीर्थंकर आद्य॥

अन्तर्ध्वनि

जहाँ आप विराजे हैं, उस दिशा को अपने ज़ोरदार गंभीर-नाद से भर देनेवाला, त्रिलोकवर्ती प्राणियों तक सत्संग-लाभ का संदेश पहुँचाने में निपुण और आपका यशोगान करनेवाला दुन्दुभि-प्रातिहार्य (नगाड़ा) मृत्युंजय अर्थात् आपका जय-घोषक बन आकाश में बजता है। दुन्दभि-वाद्यों की कुल संख्या साढ़े बारह करोड़ होती है।

1. सुख / शिव 2. भूरि 3. नंदति

सुर-पुष्प-वृष्टि प्रातिहार्य की छटा ही निराली है।

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिरुद्घा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता[1]-
दिव्या दिवः पतति ते वचसां[2] ततिर्वा॥ 33॥

अन्वयार्थ

जो (गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता)सुगन्धित जल-बिन्दुओं एवं सुखद वायु के झोंकों के साथ धीमे-धीमे गिरनेवाली है तथा जो (उद्घा)उत्कृष्ट एवं (दिव्या)दैवी है, ऐसी (मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिः)मन्दार, नमेरु, श्रेष्ठ पारिजात और सन्तानकआदि सुन्दर स्वर्गीय पुष्प-राशि की वर्षा (दिवः पतति)आकाश से गिरती है (वा) मानों (ते वचसां ततिः) आपके वचनों की राशि हो।

पद्यानुवाद

पारिजात, मन्दार, नमेरू, सन्तानक हैं सुन्दर फूल,
जिनकी वर्षा नभ से होती, उत्तम, दिव्य तथा अनुकूल।
सुरभित जल-कण, पवन सहित शुभ, होता जिसका मंद प्रपात,
मानो तव वचनाली बरसे, सुमनाली बनकर जिन-नाथ! ।।

अन्तर्ध्वनि

हे विभु! दिव्य पुष्प-वर्षा देखते ही बनती है। ऐसा लगता है मानो आपकी भव-ताप-हारिणी वाणी शीतल सुरभित जल-बिन्दुओं से युक्त हो, मन्दार, नमेरु, पारिजात तथा सन्तानक आदि स्वर्ग के सुन्दर पुष्पों का रूप धारण करके प्रशस्त वायु के झोकों के साथ धीमे-धीमे आकाश से बरस रही हो। एक भी पुष्प उलटा नहीं गिरता। क्या प्रभु-चरणों में गिरनेवाला अधोमुखी हो सकता है?

1. प्रयाता 2. वयसां

दर्शक के सप्त-भव दर्शानेवाला आपका आभामंडल अनोखा है।

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा[1] विभोस्ते,
लोक-त्रये[2] द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या[3],
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्या[4] ॥ 34 ॥

अन्वयार्थ

जो (दीप्त्या) उज्ज्वलता की अपेक्षा (प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या अपि)उगते हुए अन्तराल-रहित सूर्यों की भारी संख्यावाली होकर भी (सोम-सौम्या)चन्द्रमा-सम सुहावनी है तथा (लोक-त्रये) तीनों जगत में (द्युतिमतां) प्रकाशमान पदार्थों की (द्युतिं आक्षिपन्ती) कान्ति को लज्जित करनेवाली है, ऐसी (ते विभोः) आप विभु के (शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि विभा) देदीप्यमान भामंडल की महान आभा (निशां अपि) रात्रि को भी (जयति) पराजित करती है- अंधकार को नष्ट करती है।

पद्यानुवाद

विभो ! आपके जगमग-जगमग भामंडल की प्रभा विशाल,
त्रि-भुवन में सबकी आभा को लज्जित करती हुई त्रिकाल।
उज्ज्वलता में अन्तराल बिन अगणित उगते सूर्य-समान,
तो भी शशि-सम शीतल होती, हरे निशा का नाम-निशान

अन्तर्ध्वनि

हे प्रभा-पुंज प्रभु ! आपके भामंडल की आभा अन्तराल-विहीन एकसाथ उगते अनेक सूर्यों-सी उज्ज्वल होकर भी चन्द्रमा-सम शीतल है तथा विश्व के सभी प्रकाशमान पदार्थों की कान्ति को लज्जित करनेवाली है। वह रात्रि पर विजय प्राप्त करती है अर्थात् उससे अन्धकार पूर्णतः विलीन हो जाता है।

1. चञ्चत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा 2. लोक-त्रय-द्युतिमतां 3. संख्यां 4. सौम्याम्

दिव्यध्वनि प्रातिहार्य आश्चर्यकारी है।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रि-लोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः[1] प्रयोज्यः॥ 35 ॥

अन्वयार्थ

(ते दिव्य-ध्वनिः) आपकी दिव्य-ध्वनि (स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः) स्वर्ग और मोक्ष जाने के मार्गों का अनुसन्धान करनेवालों के लिये इष्ट, (त्रि-लोक्याः)तीनों जगत को (सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः) वास्तविक धर्म का स्वरूप बताने में सर्वोपरि निपुण तथा (विशदार्थ-सर्व-भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः) स्पष्ट-अर्थ-सहित होना एवं सर्व-भाषारूप परिवर्तित होना, इन गुणों से (प्रयोज्यः) प्रयुक्त होने योग्य (भवति) होती है।

पद्यानुवाद

स्वर्ग-लोक या मोक्ष-धाम के पथ के खोजी को जो इष्ट,
सच्चा धर्म-स्वरूप जगत को बतलाने में परम विशिष्ट।
प्रगट अर्थ-युत सब भाषामय परिवर्तन का लिये स्वभाव,
दिव्य आपकी वाणी खिरती समवसरण में महाप्रभाव॥

अन्तर्ध्वनि

हे हितोपदेशक ! आपकी दिव्य-ध्वनि, स्वर्ग-मोक्ष का मार्ग अर्थात् श्रावक-मुनि-धर्म खोजने वालों को इष्ट, तीनों जगत के लिये सच्चे धर्म का स्वरूप बतलाने में अद्वितीय और स्पष्ट अर्थ को लिये हुए सर्व-भाषारूप बदलने में समर्थ होती है। वह एक योजन तक समानरूप से व्याप्त होती है और श्रोताओं को उनकी पात्रता एवं जिज्ञासानुसार इष्टोपदेश प्रदान करती है, तथा वे श्रोता भी अपनी योग्यतानुसार स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग-देशसंयम या सकल-संयम को अंगीकार करते हैं। आपकी ध्वनि ॐकार-नादरूप अनक्षरी होती है तथा सर्वांग से प्रस्फुटित होती है।

1. गुण-प्रयोज्यः

तीर्थ-प्रवर्तन के लिये आपने सारे आर्यखंड में आकाश-मार्ग से अद्भुत पद-विहार किया।

उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति[1]-
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥ 36॥

अन्वयार्थ

(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ) जो खिले हुए नवीन स्वर्ण-कमलों के पुंज-सम कान्ति और सब ओर प्रकाशमान नखों की किरण-शिखाओं के कारण मनोहर हैं, ऐसे (तव पादौ) आपके दो चरण (यत्र) जहाँ (पदानि धत्तः) डग भरते हैं, (तत्र) वहाँ (विबुधाः) देव (पद्मानि परिकल्पयन्ति) कमलों की रचना कर देते हैं।

पद्यानुवाद

खिले हुए नव स्वर्ण-कमल-दल जैसी सुखद कान्ति के धाम,
नख से चारों ओर बिखरती किरण-शिखाओं से अभिराम।
ऐसे चरण जहाँ पड़ते तव, वहाँ कमल दो सौ पच्चीस,
स्वयं देव रचते जाते हैं और झुकाते अपना शीश॥

अन्तर्ध्वनि

हे जिनेन्द्र ! आपके विहार की छटा निराली है। विकसित हुए नवीन स्वर्ण-कमलों के पुञ्ज-सम कान्तिमान तथा दर्पण-सम स्वच्छ नखों के आस-पास विकीर्णित किरणों से नयनाभिराम आपके श्री चरण गमन-काल में जहाँ डग भरते हैं, वहाँ देव-गण आपके निक्षिप्त चरण-तले एक दिव्य-कमल और सब ओर ३२ पंक्तियों में ७-७ कमलों की भव्य-रचना करते हैं। कुल २२५ कमल होते हैं और वह दृश्य सचमुच ही एक अद्भुत दृश्य होता है।

1. पुञ्ज -कान्ती

आपके समवसरण-जैसा वैभव अन्य का कहाँ ?

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य[1]।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि॥ 37॥

अन्वयार्थ

(इत्थं)इस रीति से (जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (धर्मोपदेशन-विधौ)धर्मोपदेश की विधि में (यथा) जिस प्रकार (तव विभूतिः) आपकी विभूति (अभूत्) हुई थी, (तथा) उस प्रकार (परस्य न) अन्य की नहीं हुई। (यादृक्) जैसी (प्रहतान्धकारा प्रभाः) अन्धकार-विनाशक प्रभा (दिनकृतः) सूर्य की होती है, (तादृक्)वैसी (विकाशिनः अपि ग्रह-गणस्य) प्रकाशमान होते हुए भी ग्रहों के समूह की (कुतः) कैसे संभव है?

पद्यानुवाद

धर्म-देशना में तव वैभव इस प्रकार ज्यों हुआ अपार,
अन्य किसी के वैभव ने त्यों नहीं कहीं पाया विस्तार।
होती जैसी प्रखर प्रभा प्रभु ! रवि की करती तम का नाश,
जगमग-जगमग करने पर भी कहाँ ग्रहों में वही प्रकाश?॥

अन्तर्ध्वनि

देव-रचित बारह योजन विस्तृत समवसरण में, हे अरहंत ! जो वैभव आपके धर्मोपदेश के समय हुआ था, वह अन्यत्र नहीं हुआ, सो ठीक ही है। जो प्रभाव सूर्य की तमोनाशक प्रभा का होता है वह ग्रह-समूह में कैसे संभव है, भले ही वह प्रकाशमान हो? हे तीर्थनायक ! आप वास्तव में प्रथम-अद्वितीय थे। कुल मिलाकर आपका उपदेश धर्म को ही उद्घाटित करता है जिसे अपनाकर भक्त का मार्ग सुखकर हो जाता है। आपकी अपार विभूति का मूल भी तो धर्म ही था।

1. तथापरस्य

आपकी भक्ति भक्त को निर्भीक बनाती है।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं[1],
दृष्टवा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥ 38॥

अन्वयार्थ

(श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपं)झरने वाले मद से मटमैले चंचल गालों के मूल-भाग पर मंडराते हुए मतवाले भ्रमरों की गुंजार से जिसका क्रोध तीव्र हो गया है, (ऐरावताभं) जो ऐरावत हाथी जैसा है, (उद्धतं) उद्दण्ड है और (आपतन्तं) आगे बढ़ रहा है, ऐसे (इभं दृष्टवा) हाथी को देखकर (भवदाश्रितानां) आपके शरणागतों को (भयं नो भवति) डर नहीं लगता।

पद्यानुवाद

मद झरने से मटमैले हैं हिलते-डुलते जिसके गाल,
फिर मँड़राते भौरों का स्वर सुनकर भड़का जो विकराल।
ऐरावत-सम ऊँचा पूरा आगे को बढ़ता गजराज,
नहीं डरा पाता उनको जो तव शरणागत हैं जिनराज!

अन्तर्ध्वनि

हे भव्य-शरण! जो इन्द्र के वाहन ऐरावत-सम मोटा-तगड़ा है, जिसके परिपुष्ट हिलते-डुलते गाल गण्डस्थल से झरते मद-जल से मटमैले हैं और गन्ध से खिंच कर आस-पास मँड़राते हुए मतवाले भ्रमरों की गुंजार से जिसका क्रोध भड़क गया है, ऐसे मद-मत्त हाथी को अपने सामने आता देखकर भी आपके शरणागत लोग बिलकुल नहीं घबराते। मनरूपी मतवाला हाथी भी आपकी शरण लेने पर शांत हो जाता है।

1. ऐरावताभमिभमुत्कटमापतन्तं

आपके भक्त पर सिंह भी आक्रमण नहीं करता।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥ 39॥

अन्वयार्थ

(भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः) जिसने फाड़े हुए गज-मस्तक से टपकने वाले रक्त-रंजित मोतियों के समूह द्वारा भूमि-खंड को व्याप्त कर दिया है तथा (बद्ध-क्रमः) जो पंजों को सटा चुका है, ऐसा (हरिणाधिपः अपि) सिंह भी (क्रम-गतं) चपेट में आये हुए (ते क्रमायुगाचल-संश्रितं) आपके चरण-युगलरूपी पर्वत का आश्रय लेनेवाले मनुष्य पर (न आक्रामति) आक्रमण नहीं करता।

पद्यानुवाद

लहु से लथपथ गिरते उज्ज्वल गज-मुक्ता गज मस्तक फाड़,
बिखरा दिये धरा पर जिसने अहो! लगाकर एक दहाड़।
ऐसा सिंह न करता हमला होकर हमले को तैयार,
उस चपेट में आये नर पर जिसे आपके पग आधार॥

अन्तर्ध्वनि

गजराज के मस्तक को फाड़कर रक्त-लिप्त कान्तिमान गज-मुक्ताओं को भूमि-खण्ड पर बिखराने वाला और छलांग मारने को तैयार खूंखार सिंह भी अपनी चपेट में आये हुए आपके चरणों की ओट में सुरक्षित भक्त पर हमला नहीं करता। कालरूपी सिंह भी आपके चरणों का आश्रय लेनेवाले सल्लेखनाधारी पर आक्रमण नहीं करता। तभी तो उसकी मृत्यु उस पर हावी न होकर मृत्यु-महोत्सव बन जाती है।

आपका कीर्तन प्रचंड अग्नि के लिये जल-स्वरूप है।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥ 40॥

अन्वयार्थ

(त्वन्नाम-कीर्तन-जलं) आपका नाम-कीर्तनरूपी जल, (कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं) प्रलय-कालीन पवन से भड़की हुई अग्नि के समान, (ज्वलितं) ज्वालाओं से युक्त, (उज्ज्वलं) उज्ज्वल, (उत्स्फुलिङ्गं) चिनगारी उचटाने वाली और (विश्वं जिघत्सुं इव) सबको खाने की इच्छुक-सी (सम्मुखं आपतन्तं) आगे बढ़ती हुई (दावानलं) वन की अग्नि को (अशेषं) पूर्णतः (शमयति) बुझा देता है।

पद्यानुवाद

प्रलय-काल की अग्नि सरीखी ज्वालाओं वाली विकराल,
उचट रही जो चिनगारी बन, काल सरीखी जिसकी चाल।
सबके भक्षण की इच्छुक-सी आगे बढ़ती वन की आग,
मात्र आपके नाम-नीर से वह पूरी बुझती नीराग! ॥

अन्तर्ध्वनि

हे भवाग्नि-निवारक जिन! प्रलयाग्नि-तुल्य धधकती और उचटती चिनगारियों वाली तथा समूचे विश्व को निगल जाने की इच्छुक-सी आगे बढ़ती हुई भीषण जंगल की आग आपके अग्नि-शामक नाम का कीर्तन (बारम्बार नामोच्चारण) करते ही पूर्णतः शान्त हो जाती है। आपका शुभ नाम अद्भुत जल-तुल्य है, जो काम-क्रोध रूपी अग्नि को भी शांत करने में सक्षम है।

सर्प का उपद्रव भक्त को हानि नहीं पहुँचाता।

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण[1] निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी[2] हृदि यस्य पुंसः॥ 41॥

अन्वयार्थ

(यस्य पुंसः हृदि) जिस पुरुष के हृदय में (त्वन्नाम-नाग-दमनी) आपका नाम-रूपी नाग-दमनी अर्थात् गरुड़-रत्न है, (निरस्त-शङ्कः) वह निर्भीक भक्त (आपतन्तं) सामने आते हुये (रक्तेक्षणं) लाल आँखों वाले, (समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं) मतवाली कोयल के कण्ठ-सम काले, (क्रोधोद्धतं) क्रोध से भड़के हुए और (उत्फणं) उठे हुए फना वाले (फणिनं) नाग को (क्रम-युगेण) दोनों पैरों से (आक्रामति) लांघ जाता है।

पद्यानुवाद

कोकिल-कण्ठ सरीखा काला लाल-नेत्र वाला विकराल,
फणा उठाकर गुस्से में जो चलता टेढ़ी-मेढ़ी चाल।
आगे बढ़ते उस विषधर को वह करता पैरों से पार,
अहो! बेधड़क जिसके हिय तव नाम-नाग-दमनी विषहार॥

अन्तर्ध्वनि

हे नाथ! आपका नाम ही सर्प को वश में करनेवाली गरुड़ मणि है। उसे हृदय में धारण करनेवाला भक्त साँप से नहीं घबड़ाता। यदि लाल आँखों वाला भीषण कृष्ण-नाग भी रुष्ट होकर फन फैलाकर सम्मुख आ रहा हो, तो वह निडर मनुष्य यमराज के उस विश्वस्त प्रतिनिधि को अपने पैरों से लांघ जाता है! सर्प उसे नहीं डसता। आपका भक्त सांसारिक अड़चनों को भी निर्भीकतापूर्वक पार कर जाता है। विषयभोगरूपी विषैले विषधर उसे डसकर दुर्गति में नहीं पहुँचा सकते।

1. क्रम-युगेन 2. नाग-दमनो

विकट शत्रु-सेना आपके कीर्तन से विघट जाती है।

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीम-नाद-
माजौ बलं बलवतामरि[1]-भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥ 42 ॥

अन्वयार्थ

(आजौ) रण-क्षेत्र में (वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीम-नादं) सरपट दौड़ने वाले घोड़ों तथा हाथियों की चिंघाड़ों से जिसमें भयानक ध्वनि है, ऐसी (बलवतां अरि-भूपतीनां) बलिष्ट शत्रु-राजाओं की (बलं) सेना, (त्वत्कीर्तनात्) आपके कीर्तन से (उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं तमः इव) उगते सूर्य की किरण-शिखाओं द्वारा दूर हटाये गये अन्धकार के समान (आशु) शीघ्र ही (भिदां उपैति) भेदन को प्राप्त हो जाती है।

पद्यानुवाद

जहाँ हिनहिनाहट घोड़ों की जहाँ रहे हाथी चिंघाड़,
मची हुई है भीषण ध्वनि जो कानों को दे सकती फाड़।
वह सशक्त रिपु-नृप की सेना तव गुण-कीर्तन से तत्काल,
विघटित होती जैसे रवि से विघटित होता तम विकराल ॥

अन्तर्ध्वनि

हे अरिहंत ! युद्ध-क्षेत्र में हाथी-घोड़ों की भयंकर ध्वनि से युक्त प्रबल शत्रु-सेना आपके कीर्तन से रवि-किरणों के द्वारा खंडित तिमिर के समान, तत्काल तितर-बितर हो जाती है। विपत्तियों की सेना भी तो आपके ही कीर्तन से नष्ट होती है। मोहरूपी वैरी राजा की सेना आपके कीर्तन के बिना कैसे भिद सकती है?

संपादकीय टिप्पणी- वि.सं. 1563 के गुटके में जो बसवा ग्राम का है और बौसा ग्राम के एक गुटके में भी 'बलवतामरि भूपतीनाम्' यह पाठ है (जैन निबन्ध रत्नावली)।

1. बलवतामपि भूपतीनाम्

चरम-सीमा को प्राप्त युद्ध में भी भक्त का पक्ष विजयी होता है।

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारि-वाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥ 43 ॥

अन्वयार्थ

(कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारि-वाह-वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे युद्धे) जो भालों की नोक द्वारा फाड़े गये हाथियों के रक्तरूपी जल-प्रवाह में तेजी के साथ घुसने और बाहर निकलने के लिये उतावले हुए योद्धाओं के कारण भयानक है, ऐसे युद्ध में (त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणः) आपके चरणरूप कमल-वन का आश्रय पाने वाले मनुष्य, (विजित-दुर्जय-जेय-पक्षाः) जिन्होंने कठिनाई से जीतने योग्य शत्रु-पक्ष को पराजित किया है, ऐसे होकर (जयं लभन्ते) विजय को प्राप्त होते हैं।

पद्यानुवाद

भालों से हत गजराजों के लहु की सरिता में अविलंब,
भीतर-बाहर होने वाले योद्धा ला देते हैं कंप,
उस रण में तव पद-पंकज का होता है जिनको आधार,
विजय-पताका फहराते वे दुर्जय-रिपु का कर संहार ॥

अन्तर्ध्वनि

हे कर्म-शत्रु-हन्ता ! यदि युद्ध की स्थिति अधिक विकट हो और शस्त्रों से विदीर्ण हाथियों की रक्त-सरिता में वेग-पूर्वक घुसने और पार करके बाहर आने वाले उतावले योद्धा मरने-मारने में संलग्न हों, तो भी आपके चरणों को शरण बनाने वाले ही दुर्जय शत्रु को हराकर विजय-पताका फहराते हैं। मोह-शत्रु कितना भी उपद्रव क्यों न मचाए, पर अन्ततः आपका भक्त ही विजयी होता है।

समुद्री-तूफान का भय आपके स्मरणमात्र से टल जाता है।

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र[1]-
पाठीन-पीठ-भयदोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः[2] स्मरणाद् व्रजन्ति॥ 44॥

अन्वयार्थ

(क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-पाठीन-पीठ-भयदोल्वण-वाडवाग्नौ अम्भोनिधौ) जो खलबली को प्राप्त हुए भयंकर घड़ियालों के झुंड और पाठीन-नामक विशाल मछली का स्थान है तथा भीतर ही भीतर भयंकर उत्कट बड़वानल से युक्त है, ऐसे समुद्र में (रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्राः) जिनका जहाज उछलती हुई तरंग की चोटी पर स्थित हो गया है, वे मनुष्य (भवतः स्मरणात्) आपके स्मरणमात्र से (त्रासं विहाय) भय को छोड़कर (व्रजन्ति) गन्तव्य को प्राप्त हो जाते हैं।

पद्यानुवाद

जहाँ भयानक घड़ियालों का झुंड कुपित है, जहाँ विशाल
है पाठीन-मीन, भीतर फिर, भीषण बड़वानल विकराल।
ऐसे तूफ़ानी सागर में लहरों पर जिनके जलयान,
तव सुमिरन से भय तजकर वे पाते अपना वांछित स्थान॥

अन्तर्ध्वनि

भड़के हुए भयानक घड़ियालों और विशालकाय मत्स्यों के निवासस्थान एवं भीतर उत्कट बड़वानल से युक्त तूफानी समुद्र में जिनका जहाज बहुत ऊंची तरंग पर जा पहुँचा है, मानों पलटने ही वाला हो, वे यात्री आपके स्मरणमात्र से भय-मुक्त होकर गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार भव-सागर की विपत्तियों में बुरी तरह फँसे प्राणी आपके ही स्मरण से तिर जाते हैं।

1. नक्र-चक्रे 2. तव संस्मरणाद्जन्ति

आपके चरणों की धूलिरूपी अमृत को पाकर कौन रोगी रह सकता है ?

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः[1],
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा,
मर्त्या[2] भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्य-रूपाः॥ 45॥

अन्वयार्थ

(उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः) उत्पन्न हुए भयंकर जलोदर के भार से जिनकी कमर टेढ़ी हो गई है, (शोच्यां दशां उपगताः) जो करुण अवस्था को प्राप्त हुए हैं और (च्युत-जीविताशाः) जिनके जीवन की आशा छूट चुकी है, ऐसे (मर्त्याः) मनुष्य (त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहाः) आपके चरण-कमलों की रज / परागरूप-अमृत से लिप्त-शरीर होकर (मकर-ध्वज-तुल्य-रूपाः) कामदेव-सम रूपवान् (भवन्ति) हो जाते हैं।

पद्यानुवाद

हुआ जलोदर रोग भयंकर कमर झुकी दुख बढ़ा अपार,
दशा बनी दयनीय न आशा जीने की भी दिन दो-चार।
वे नर भी तव पद- पंकज की, धूलि-सुधा का पाकर योग,
हो जाते हैं कामदेव सम रूपवान पूरे नीरोग॥

अन्तर्ध्वनि

आपकी चरण-रज, रज नहीं, अमृत है। हे प्रभु ! डरावने जलोदर के भार से जिनकी कमर टेढ़ी है, जो शोचनीय दशा को प्राप्त हैं और जिनके बचने की आशा नहीं रह गयी है, वे लोग भी उस अमृतमय चरण-रज को शरीर पर लगाकर कामदेव-सम रूपवान् और स्वस्थ हो जाते हैं। तृष्णा का पेट बहुत बड़ा होता है, पर आपकी चरणरज उसका उपचार कर देती है। तृष्णा-मुक्त होकर भक्त अतिशय सुन्दर सिद्ध-दशा को प्राप्त हो जाता है।

1. भग्नाः 2. सद्यो

आपका सतत नामस्मरण
बन्धन-मुक्ति का अमोघ मन्त्र है।

आपाद-कण्ठमुरु-शृंङ्खल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यःस्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति॥ 46॥

अन्वयार्थ

(आ-पाद-कण्ठं) पैरों से कण्ठ-पर्यन्त (उरु-शृंङ्खल-वेष्टिताङ्गा) मोटी शृंख्ला / सांकलों से जिनका शरीर जकड़ा हुआ है और (गाढ़ं) दृढ़तापूर्वक (बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः) कसी हुई महाबेड़ियों के किनारों से घिसकर जिनकी पिण्डलियाँ छिल गई हैं, ऐसे (मनुजाः) मनुष्य (अनिशं) निरन्तर (त्वन्नाम-मन्त्र स्मरन्तः) आपके नामरूपी मन्त्र का स्मरण करते हुए (सद्यः) शीघ्र ही (स्वयं) अपने आप (विगत-बन्ध-भया) बन्धन के भय से रहित (भवन्ति) हो जाते हैं।

पद्यानुवाद

जकड़े हैं पूरे के पूरे, भारी साँकल से जो लोग,
बेड़ी से छिल गई पिण्डलियाँ, भीषण कष्ट रहे जो भोग।
सतत आपके नाम-मन्त्र का, सुमिरन करके वे तत्काल,
स्वयं छूट जाते बन्धन से ना हो पाता बाँका बाल॥

अन्तर्ध्वनि

जो पैरों से गले तक भारी जंजीरों से वेष्टित हैं और जिनकी पिंडलियाँ कसी हुई विशाल बेड़ियों के किनारों से रगड़ खा कर अत्यधिक छिल गई हैं, वे भी आपके नाम-मंत्र का सतत स्मरण करते हुए शीघ्र ही बन्धन-मुक्त हो जाते हैं। इसी प्रकार भक्त की असंख्यात् कर्मरूपी बेड़ियाँ आपके नामरूपी मन्त्र की आराधना द्वारा निर्जीर्ण हो जाती हैं।

इस स्तोत्र का पठन,
भय को भी भयभीत करने वाला है!

मत्त-द्विपेन्द्र-मृग-राज-दवानलाहि-
संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु[1] नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं[2] स्तवमिमं मतिमानधीते॥ 47॥

अन्वयार्थ

(यः मतिमान) जो विवेकी मनुष्य (तावकं इमं स्तवं) आपके इस स्त्रोत को (अधीते) पढ़ता है, (तस्य) उसका (मत्त-द्विपेन्द्र-मृग-राज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थं भयं) पागल हाथी, सिंह, दवानल, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर-व्याधि और बन्धन से उत्पन्न हुआ भय (आशु) शीघ्र ही (भिया इव) भय से ही मानों (नाशं उपयाति) विनाश को प्राप्त हो जाता है।

पद्यानुवाद

पागल हाथी, सिंह, दवानल, नाग, युद्ध, सागर विकराल,
रोग जलोदर या बन्धन से प्रकट हुआ भय भी तत्काल।
स्वयं भाग जाता भय से उस भक्त-पुरुष का जो मतिमान्,
करता है इस स्तोत्र-पाठ से, हे प्रभुवर! तव शुचि-गुण-गान॥

अन्तर्ध्वनि

जो बुद्धिमान मनुष्य आपके इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसका भय तत्काल भयभीत होकर स्वयं समाप्त हो जाता है, चाहे वह भय पागल हाथी, सिंह, वनाग्नि, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर-व्याधि या बन्धन के कारण भी क्यों न उत्पन्न हुआ हो।

1. तस्य प्रणाशमुपयाति 2. सस्तेऽनिशं

मुक्ति-लक्ष्मी उस मानतुंग भक्त
का वरण करती है, जो

स्तोत्र-स्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्[1]।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्त्रं,
तं मान-तुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ 48 ॥

अन्वयार्थ

(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (इह) इस विश्व में, (यःजनः) जो मनुष्य (मया) मेरे द्वारा (तव गुणैः) आपके गुणों से (भक्त्या) भक्ति-पूर्वक (निबद्धां) गूँथी गई और (विविध-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्) विविध अक्षररूपी रंग-बिरंग पुष्पों वाली (स्तोत्र-स्रजं) स्तोत्ररूपी माला को (अजस्त्रं) हमेशा (कण्ठ-गतां धत्ते) कण्ठ में पहने रहता है, (तं मान-तुङ्गं) उस सम्मान से ऊँचे उठे हुए मनुष्य को (अवशा लक्ष्मीः) स्वाधीन लक्ष्मी (समुपैति) प्राप्त होती है।

पद्यानुवाद

सूत्र बना गुण-वृन्द आपका, अक्षर रंग-बिरंगे फूल,
स्तुति-माला तैयार हुई यह भक्ति आपकी जिसका मूल।
मानतुंग जो मनुज इसे नित कंठ धरे उसको हे देव !
वरे नियम से जग में अतुलित मुक्तिरूप लक्ष्मी स्वयमेव।

अन्तर्ध्वनि

हे जिनेन्द्र ! मैंने भक्तिपूर्वक आपके गुणरूपी धागे में अनेक अक्षररूपी रंग-बिरंगे पुष्प पिरोकर यह स्तोत्ररूपी माला गूँथी है। जैसे पुष्पमाला से सम्मानित पुरुष शोभारूपी लक्ष्मी द्वारा वरा जाता है, अर्थात् शोभित होता है, वैसे ही इस स्तोत्ररूपी माला को कण्ठहार बनानें वाला मानतुंग (गौरव से उन्नत भक्त) अर्थात् जहाँ कहीं भी अपना माथा न टेकने वाला आपका प्रतिष्ठित सेवक, मुक्तिरूपी लक्ष्मी द्वारा वरा जाता है, अर्थात् संसार से मुक्त होता है। भक्ति मुक्तिदात्री है, इसलिये भक्त लौकिक/पारलौकिक प्रतिष्ठा के साथ अन्ततः पूर्ण आत्मविकास को प्राप्त होकर सिद्ध होता है।

1. रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्

आचार्य मानतुङ्ग-स्वामि विरचितं

नमिऊण स्तोत्रं

अपरनाम

भयहर संथवो

❖❖❖

अन्वयार्थ एवं पद्यानुवाद

पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी मुनिराज
के परम शिष्य
क्षु. श्री ध्यानसागरजी महाराज

महामंत्र

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आइरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं

प्रस्तावना

जैन-वाङ्मय में स्तोत्र-साहित्य अङ्गबाह्यश्रुत का विषय माना जाता है। **समन्तभद्र स्वामी स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं :-**

गुणस्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्व-कथा स्तुतिः।

अर्थात् विद्यमान अल्प-गुणों का उल्लंघन कर उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर कहना, स्तुति है।

आचार्य जिनसेन स्वामी आदिपुराण में कहते हैं:-

''स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः''

अर्थात् स्तुत्य के पवित्र गुणों का उत्कीर्तन करना, स्तुति है। दिगम्बर-आम्नाय में विश्रुत स्तुतियां प्रायः संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं। कुछ स्तुतियाँ प्राकृत-भाषा में भी हैं। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों वर्गों में कतिपय स्तोत्र समानरूप से मान्य हैं। देश-भाषीय स्तुतियाँ उत्तरकालीन रचनाओं में अन्तर्भूत हैं। कुछ विख्यात स्तोत्रों के नाम इस प्रकार हैं:- **(1) स्तुति-विद्या (2) देवागम-स्तोत्र (3) स्वयंभू-स्तोत्र (4) शान्त्यष्टक (5) अकलङ्क स्तोत्र (6) भक्तामर-स्तोत्र (7) कल्याणमन्दिर-स्तोत्र (8) एकीभाव-स्तोत्र (9) जिन-सहस्रनाम-स्तोत्र (10) सिद्धिप्रिय-स्तोत्र (14)भूपाल- चतुर्विंशतिका (15) ऋषिमण्डल-स्तोत्र (16) महावीराष्टक-स्तोत्र (17) सुप्रभात स्तोत्र (18) लघु तत्त्व-स्फोट (19) विषापहार स्तोत्र इत्यादि।**

भक्तामरकार की एक अन्य अप्रसिद्ध रचना प्रस्तुत **नमिऊण स्तोत्र** अपरनाम **भयहर-संथवो** है, जो भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की प्राकृत स्तुति है। **प्रभावक चरित** के कर्ता **प्रभाचन्द्र** एवं **गुणाकर सूरि** इस स्तोत्र को भक्तामरकार का ही बताते हैं। इसकी प्राचीनतम प्रति 13 वीं शती की है, जो खंभात के शान्तिनाथ जैन भण्डार में है। 14 वीं शती से 17 वीं शती पर्यन्त इस पर लगभग 8-10 वृत्तियाँ और अवचूरियाँ रची गयीं। यह कार्य श्वेताम्बर-आम्नाय द्वारा निष्पन्न हुआ। **कुछ विद्वानों का मत है कि यह रचना आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने अपनी पूर्वावस्था में की। इसकी प्राचीनतम प्रति में 21 गाथाएँ हैं।** प्रस्तुत अनुवाद में 23 गाथाएँ और 1 दोहा, इस प्रकार कुल 24 पद्य समन्वित हैं। **भक्तामर एवं भयहार में जो**

साम्य है, वह अवलोकनीय है, यथाः-

(1) 7 वीं शती के कविराज **मयूर** की भाषा-शैली शैली-विज्ञान के विद्वानों के अनुसार दोनों ही स्तोत्रों में दृष्टिगत होती है, जो उन्हें समकालीन प्रमाणित करती है।

(2) मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा की प्रक्रिया उभयत्र (दोनों में) तुल्य है।

(3) समापन-काव्यों में **मानतुङ्ग** शब्द श्लेषरूप में प्रयुक्त हुआ है।

(4) आठ में से सात संकट दोनों में समान हैं।

(5) दोनों स्तोत्रों में दीर्घ-समास-युक्त पद हैं।

(6) चित्रण भिन्न होने पर भी चित्रण-शैली दोनों स्तोत्रों में एक-जैसी है।

(7) छन्द एवं भाषा पृथक् होते हुए भी उभयत्र साहित्यिक लयबद्धता समान है।

इन समानताओं के होने पर भी एकाध विद्वान् दोनों स्तोत्रों के कर्ता एक थे, इस पर सहमत नहीं। अस्तु।

भयहर-संथवो की अन्तर्ध्वनि कुछ इस प्रकार हैः-

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञाः- प्रणाम करने वाले देव-समूह के मुकुटों की मणि-किरणों से व्याप्त मुनि-चरणों को नमस्कार करके मैं (स्तुतिकर्ता) महान् भयों को हरनेवाली स्तुति करूँगा।

कुष्ठ-व्याधि-भय-निवारणः- अग्नि-तुल्य कुष्ठ-महारोग की चिनगारियों से जिनका सारा शरीर दग्ध हो गया है, जिनके हाथ, पैर, नख और मुख सड़े हुए हैं, जिनकी नासिका अन्दर धँस गयी है और जिनकी कान्ति समाप्त हो चुकी है, वे विरूप रोगी भी आपकी चरणाराधना के जल का अंजलिमात्र सिंचन पाकर कान्तिमान्, नीरोग एवं सुंदर बन जाते है, जैसे दावानल से आहत हुये पर्वतीय-वृक्ष वर्षा-ऋतु में पुनः हरे-भरे होकर शोभित होने लगते हैं।

समुद्र-भय-निवारणः- जो मनुष्य पार्श्व-जिनेन्द्र के चरणों को सदैव नमस्कार करते हैं, वे ऊँची तरंगों की भयंकर-ध्वनि वाले तथा प्रचण्ड पवन द्वारा क्षुभित समुद्र में अखण्डित जलयान-सहित अपने इष्ट-तट तक सुरक्षित पहुँच जाते हैं, भले ही जलयान के संचालक ने उसे हड़बड़ी और घबराहट के कारण भाग्य-

भरोसे छोड़ दिया हो।

दावाग्नि-भय-निवारणः- जब तीव्र वायु से वन की अग्नि अत्यधिक भड़क उठती है और उसकी ज्वालाएँ सभी वृक्षों पर व्याप्त हो जाती हैं, तब वहाँ से सुरक्षित निकल पाना दुष्कर हो जाता है और वन्य-प्राणियों की स्थिति दयनीय हो जाती है। ऐसे में भोली हिरणियों की चीत्कार-ध्वनि अत्यन्त भयावह जान पड़ती है, लेकिन त्रिभुवनवर्ती विस्तृत क्षेत्र को शीतलता-प्रदायक जिनेन्द्र-चरणों का स्मरण करने वाले भक्तों को वह दावानल भयभीत करने में समर्थ कहाँ ?

सर्प-भय-निवारणः- हे भगवन्! आपके नामाक्षर स्पष्टतः सिद्ध किए हुए मन्त्र-तुल्य हैं। उसके प्रभाव से जो विशालकाय हैं एवं सर्प-विष-संबन्धी सात भयंकर वेगों को जिन्होंने दूर फेंक दिया है ऐसे मनुष्य उस नागराज को भी एक क्षुद्र-कीट जैसा समझते हैं, जिसकी आकृति भीषण है, फन फैला हुआ है, नेत्र लाल चिनगारी के समान चमकीले हैं, शरीर नवीन मेघ-सम काला है, जीभ लपलपा रही है और क्रोध भड़का हुआ है।

दुष्ट /चोर-भय-निवारणः- हे नाथ! आपको प्रणाम करने मात्र से भक्तजन उन भयंकर वनों से सुरक्षित निकल आते हैं, जहाँ भीलों का एवं असभ्य और क्रूर वन्य जन-जाति 'पुलिंद' का निवास है, जहाँ लुटेरों का डेरा है, जहाँ हृदय को कम्पित करने वाली तेन्दुए की ध्वनि कानों तक आ रही है एवं लुटे हुए उदास और भयभीत यात्रियों के समूह मुँह लटकाए हुए पूर्वमेव विद्यमान हैं।

सिंह-भय-निवारणः- हे प्रभो! आपके चरण-नख, मणि-माणिक्यों जैसे सुन्दर हैं और चूँकि आपके वचन मोह-शत्रु के निवारणार्थ आयुध-तुल्य हैं, अतः बड़े-बड़े राजा-महाराजा आपके चरणों को साष्टांग प्रणाम करते हैं। जिन्हें वह वचनरूपी आयुध प्राप्त है, वे उस सिंह को भी नगण्य मानते हैं, जो प्रज्वलित अग्नि-सम नेत्रों वाला है, जिसने वज्र के आघात-तुल्य नख-प्रहार द्वारा गजराज के विशाल कुम्भस्थल को फाड़ डाला है, जिसका शरीर विकराल है और जो अपना मुँह फाड़े हुये है।

हस्ति-भय-निवारणः- हे मुनियों के स्वामिन्! जो भव्य जीव आपके चरणों में सम्यक् लीन हैं, एकाग्र हैं, वे उस भीषण गजराज को विशेष नहीं

समझते, जिसके चन्द्रमा-सम श्वेत बड़े-बड़े दाँत मूसलों के समान हैं, जो सूँड फटकार-फटकार कर अत्यधिक उत्साहित हो रहा है, जिसकी आँखें मधु के समान भरी हैं, सूँड लम्बी है और वर्ण सजल-मेघ-सम काला है।

युद्ध-भय-निवारणः- हे पापों को शांत करनेवाले पार्श्व-जिन ! आपके प्रभाव से भक्त-योद्धा उस भयंकर युद्ध में भी शत्रु-राजाओं का मान-मर्दन करके उज्ज्वल यश प्राप्त कर लेते हैं, जहाँ पैनी तलवारों से प्रेरित कबन्ध (मस्तक रहित धड़) कम्पायमान हैं और बड़े-बड़े हाथी भालों के प्रहारों से विदीर्ण हो कर प्रचुरता से सीत्कार-ध्वनि कर रहे हैं।

उपसंहारात्मक एक काव्य में, पार्श्व-जिनेन्द्र के नाम का संकीर्तन उक्त सभी भयों का निवारक है, ऐसा उल्लेख है।

आगामी तीन काव्यों में, जिस प्रकार स्वयंभू-स्तोत्र में समन्तभद्र स्वामी ने और शान्त्यष्टक में पूज्यपाद स्वामी ने तीर्थंकरों से प्रार्थना की, उसी प्रकार स्तोत्रकार ने पार्श्व-तीर्थंकर से प्रार्थना की है। वृषभ-जिनेन्द्र की स्तुति करते हुये **स्वयंभूस्तोत्र** में कहा है:-

पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो,

जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः।

अर्थात् जिन्होंने क्षुद्रवादियों के शासन पर विजय प्राप्त कर ली है, ऐसे नाभिपुत्र वृषभ-जिन मेरे मन को पवित्र करें। इसी प्रकार **शान्त्यष्टक** में आचार्य कहते हैं,

कारुण्यान्मम भाक्तिकस्य च विभो ! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु

अर्थात् हे विभो ! करुणापूर्वक मुझ भक्त की दृष्टि प्रसन्न कीजिये।

भयहर-स्तोत्र में स्तोत्रकार कहते हैं- अष्ट संकटों की भाँति राजभय, यक्ष-राक्षसों की बाधा, दुःस्वप्न, अपशकुन एवं ग्रह-नक्षत्र संबन्धी पीड़ा होने पर, यात्रा के समय मार्ग में, अथवा उपसर्ग के आने पर, रात्रियों में और प्रातः सायंकाल स्तोत्र-पाठ अथवा स्तोत्र-श्रवण करनेवाले मानव का अशुभ कर्म जगत्-पूज्य आचरण के धारी पार्श्व-प्रभु शांत करें, भले ही वह स्वयं कवि-मानतुङ्ग भी क्यों न हो ! इसे सुधी पाठक कर्तृत्ववाद का समर्थन न मानकर एक भक्तिपरक कथन के रूप में ही स्वीकार करें।

19 वें काव्य से इस स्तोत्र का नाम **भयहर** होना संभावित है। यह स्तोत्र कल्याण-परम्परा की निधि एवं भव्यों के लिये आनन्दकारी है। आगे कहा है कि जो कमठ से उपसर्ग पर्यन्त (7 दिनों तक) विचलित नहीं हुए, ऐसे देव, मनुष्य और किन्नरों द्वारा संस्तुत पार्श्व-जिन जयवन्त हों। पश्चात् इस स्तोत्र में निहित एक अष्टादश वर्णों से बनने वाले मन्त्र की सूचना देकर कहा है कि जो इस गुप्त मन्त्र को ढूंढ़ लेता है, वह पार्श्व-प्रभु का पदस्थ-ध्यान करता है अर्थात् मन्त्र-जाप द्वारा धर्म्यध्यान करता है। यह जाप्य गुरु से विधिवत् ग्रहण किया जाता है।

ॐ ह्रीं अर्हं नमिऊण पासं विसहर विसह जिण फुलिंग ह्रीं श्रीं नमः

अन्तिम दोहे में, प्रसन्न-हृदय से पार्श्व-स्मरण करने वाला 108 व्याधियों के भय से छूट जाता है, ऐसा कथन है अर्थात् 108 व्याधियाँ उसके पास नहीं फटकतीं।

यह उल्लेखनीय है कि इस प्राकृत-भाषा-निबद्ध स्तुति में स्तोत्रकार ने भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी का शुभनाम 21 वें काव्य-पर्यन्त चार बार लिया और 22 वें पद्य तथा अन्तिम दोहे में भी भगवान का नाम स्पष्टतः उल्लिखित किया, जबकि **भक्तामर** में कहीं भी साक्षात् नामोल्लेख नहीं किया। हाँ **प्रथमं जिनेन्द्रम्** एवं **आद्यं** शब्दों द्वारा आदिनाथ भगवान् की ओर संकेत अवश्य किया है। भगवान् के नामों को उभयत्र मंत्र-तुल्य स्वीकार किया है (दे. **भक्तामर** काव्य 46 और **भयहर** गाथा 9) जिससे यह परिलक्षित होता है कि न तो मंत्र-शक्ति मिथ्या है, न ही मन्त्राराधना मिथ्यात्व। जैसे औषध की रोग-निवारक-शक्ति सर्वमान्य है, वैसे ही मंत्रों की शक्तियाँ भी नोकर्मरूप से मान्य हैं तथा ऐसा स्वीकार करने पर वस्तु-व्यवस्था में कहीं विपर्यास नहीं आता। हाँ मन्त्रों के चमत्कारों द्वारा लोक-प्रतिष्ठा में फँसना, हितकर नहीं। यदि मन्त्र आगमोक्त एवं परमेष्ठी के वाचक हों, तो धर्म्य-ध्यानार्थ उन्हें गुरु-मुख से विधिवत् ग्रहण करना कोई पाप नहीं है। **मूलाचार** में **आयरिय पसाएण य विज्जा मंता य सिज्झंति** ॥ 577 ॥ ऐसा उल्लेख है, अर्थात् आचार्य की कृपा से विद्याएँ और मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं तथा **द्रव्य संग्रह** में **अण्णं च गुरूवएसेण** अर्थात् कोई अन्य परमेष्ठी का वाचक मंत्र भी गुरु के उपदेश से जपा जा सकता है, ऐसा उल्लेख है। **आचार्य धरसेन स्वामी** ने शिष्यों की परीक्षा मन्त्रों से ही की थी (दे. **षट्खण्डागम-अवतरण कथा**)। **आचार्य कुन्दकुन्द**

(मूल)

सडिय-कर-चरण-नह-मुह-निबुड्ड-नासा विवन्न-लायन्ना।
कुट्ठ-महारोगानल-फुलिंग-निद्दड्ढ-सव्वंगा ॥2 ॥
ते तुह चलणाराहण-सलिलंजलि-सेय-वड्ढियच्छाया।
वण-दण-दड्ढा गिरि-पायव व्व पत्ता पुणो लच्छिं ॥3 ॥

(सडिय-कर-चरण-नह-मुह-निबुड्ड-नासा) जिनके हाथ, पैर, नख और मुख सड़ गये तथा नासिका धँस गई, **(विवन्न-लायन्ना)** जिनका लावण्य नष्ट हो चुका एवं **(कुट्ठ-महारोगानल-फुलिंग-निद्दड्ढ-सव्वंगा)** कुष्ठ महारोगरूपी अग्नि की चिनगारियों से जिनका सर्वांग दग्ध हो गया, **(ते)** वे रुग्ण मानव **(तुह)** आपके **(चलणाराहण-सलिलंजलि-सेय-वड्ढियच्छाया)** चरणों की आराधना-संबन्धी जल के अंजलिमात्र सिंचन से वृद्धिंगत कांति वाले हो **(वण-दव-दड्ढा)** वन की अग्नि से दग्ध **(गिरि-पायव व्व)** पर्वतीय-वृक्षों की भाँति **(पुणो)** पुनः **(लच्छिं पत्ता)** शोभा को प्राप्त हो गये !

(पद्यानुवाद)

धँसी नासिका और सड़ गये,हाथ-पैर, नख-मुख सारे,
कुष्ठ-अग्नि की चिनगारी से, बिगड़े जिनके तन प्यारे।
तुम चरणामृत के सिंचन से, वे नर सुन्दर बन जाते,
दुग्ध-वृक्ष ज्यों हरे-भरे हो, वर्षा में शोभा पाते।

(मूल)

दुव्वाय-खुभिय जल-निहि उब्भड-कल्लोल-भीसणारावे।
संभंत-भय-विसंठुल-निज्जामय-मुक्क-वावारे ॥4 ॥
अविदलिअ-जाण-वत्ता खणेण पावंति इच्छिअं कूलं।
पास-जिण-चलण-जुअलं निच्चं चिअ जे नमंति नरा ॥5 ॥

(जे नरा) जो मनुष्य **(निच्चं चिअ)** नित्य ही **(पास-जिण-चलण-जुअलं)** पार्श्व-जिन के चरण-युगल को **(नमंति)** नमस्कार करते हैं, वे **(दुव्वाय-खुभिय)** दुष्ट-पवन द्वारा क्षुभित, **(उब्भड-कल्लोल-भीसणारावे)** उत्कृष्ट तरङ्गों के कारण भीषण-ध्वनि-युक्त तथा **(संभंत-भय-विसंठुल-निज्जामय-मुक्क-वावारे)** हड़बड़ाये एवं भय से विक्षुब्ध नाविक ने जहाँ पर अपना कार्य छोड़ दिया है, ऐसे **(जलनिहि)** समुद्र में, **(अविदलि-जाणवत्ता)** नहीं फटे हैं जल-यान जिनके, ऐसे होकर **(खणेण)** क्षण भर में **(इच्छिअं कूलं)** इष्ट-तट को **(पावंति)** प्राप्त हो जाते हैं।

(पद्यानुवाद)

तूफ़ानी खलबली जहाँ पर, लहरों की ध्वनि भयकारी,
डर कर भाग्य-भरोसे छोड़ी नाविक ने नौका भारी।
ऐसे सागर में पारस-प्रभु-चरण-स्मरण जो करते हैं,
वांछित-तट पर शीघ्र पहुँचकर, वे निज-संकट हरते हैं।

(मूल)

खर-पवणुद्धय-वण-दव-जालावलि-मिलिय-सयल-दुम-गहणे।
डज्झंत-मुद्ध-मय-वहु-भीसण-रव-भीसणम्मि वणे ॥6॥
जग-गुरुणो कम-जुअलं निव्वाविअ-सयल-तिहुअणाभोअं।
जे संभरति मणुआ न कुणइ जलणो भयं तेसिं ॥7॥

(**खर-पवणुद्धय-वण-दव-जालावलि-मिलिय-सयल-दुम-गहणे**) तीक्ष्ण-पवन द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए दावानल की ज्वाला-पंक्तियों के संपर्क में समस्त वृक्षों के आ जाने से जो दुर्गम है तथा (**डज्झंत-मुद्ध-मय-वहु-भीसण-रव-भीसणम्मि**) जलती हुई भोली हिरणियों की भीषण ध्वनियों के कारण जो भयंकर है, ऐसे (**वणे**) वन में, (**निव्वाविअ-सयल-तिहुअणाभोअं**) शीतल कर दिया है सकल त्रिभुवनरूपी मैदान को जिसने, ऐसे (**जग-गुरुणो कम-जुअलं**) जगत-गुरु के चरण-युगल का (**जे मणुआ**) जो मनुष्य (**संभरति**) स्मरण करते हैं, (**तेसिं**) उनके लिये (**जलणो**) अग्नि (**भयं**) भय (**ण कुणइ**) नहीं करती।

(पद्यानुवाद)

पवन-वेग से सब वृक्षों पर, भीषण ज्वालाएँ आयीं,
लपटों की चपेट में चीखे, दीन हिरणियाँ घबरायीं।
तो भी भक्त नहीं घबराता, उष्ण-धधकते उस वन से,
त्रिभुवन को शीतलदायी, जग-गुरु के पद-सुमिरन से।

(मूल)

विलसंत-भोग-भीसण-फुरिआरुण-नयण-तरल-जीहालं।
उग्ग-भुअंगं नव-जलय-सत्थहं भीसणायारं ॥8॥
मन्नंति कीड-सरिसं दूर-परिच्छुइद्ध-विसम-विस-वेगा।
तुह नामक्खर-फुड-सिद्ध-मंत-गुरुआ नरा लोए ॥ 9 ॥

(**लोए**) लोक में (**तुह**) आपके (**नामक्खर-फुड-सिद्ध-मंत-गुरूआ**) नामाक्षररूपी प्रगट सिद्ध-मन्त्र से जो बड़े हैं तथा (**दूरपरिच्छुइद्ध-विसम-विस-वेगा**) सर्प के विषम-विष-संबन्धी-वेगों को जिनने दूर फेंक दिया है, ऐसे (**नरा**) पुरुष (**विलसंत-भोग-भीसण-फुरिआरुण-नयण-तरल-जीहालं**) फन फैलाये हुए, भीषण चमकीले लाल नेत्रों वाले एवं चंचल-जिह्वा-युक्त (**नव-जलय-सत्थहं**) नवीन मेघ के समान काले और (**भीसणायारं**) भयंकर आकृति वाले (**उग्ग-भुअंगं**) उग्र भुजंग को (**कीड-सरिसं**) क्षुद्र-कीड़ा जैसा (**मन्नंति**) मानते हैं।

(पद्यानुवाद)

चिनगारी-सम लाल-नयनयुत, फैले हुए फना वाला,
जीभ लपलपाता प्रकुपित हो, भीषण बादल सा काला।
नागराज वह क्षुद्र-कीट सा, लगता है जग में उनको,
नाम आपका सिद्ध-मंत्र-सम, विष-नाशक मिलता जिनको।

(मूल)

अडवीसु भिल्ल-तक्कर-पुलिंद-सद्दूल-सद्द-भीमासु।
भय-विहुर-वुन्न-कायर-उल्लूरिय-पहिय-सत्थासु ॥10॥
अविलुत्त-विहव-सारा तुह नाह ! पणाममत्त-वावारा।
ववगय-विग्घा सिग्घं पत्ता हिय-इच्छियं ठाणं॥ 11॥

(**भिल्ल-तक्कर-पुलिंद-सद्दूल-सद्द-भीमासु**) भील, तस्कर एवं असभ्य व क्रूर 'पुलिन्द' नामक वन्य-जाति के मनुष्यों के कारण और तेंदुए की ध्वनियों से जो भयंकर हैं तथा (**भय-विहुर-वुन्न-कायर-उल्लूरिय-पहिय-सत्थासु**) भय से विह्वल, मुँह लटकाए, कातर और लुटे हुए पथिकों का समूह जहाँ विद्यमान है ऐसी (**अडवीसु**) अटवियों अर्थात् वनों में, (**नाह**) हे नाथ ! (**तुह**) आपके लिये (**पणाममत्त-वावारा**) केवल प्रणाम करने वाले मनुष्य (**अविलुत्त-विहव-सारा**) नहीं लुटा है वैभवरूपी सार जिनका और (**ववगय-विग्घा**) बीत चुके हैं विघ्न जिनके, ऐसे हो (**सिग्घं**) शीघ्र ही (**हिय-इच्छियं**) हृदय को प्रिय लगने वाले (**ठाणं**) स्थान को (**पत्ता**) प्राप्त हो गये।

(पद्यानुवाद)

भील पुलिंद तेंदुए तस्कर, जहाँ बस रहे भयकारी,
जहाँ लुटे भयभीत पथिक-जन, हैं उदास कातर भारी।
उन्हीं वनों में तुम्हें नमन कर, भक्त सुरक्षित हो जाते,
अपने वैभव सहित अबाधित, वे अपने घर को आते।

(मूल)

पज्जलिआणल-नयणं दूर-वियारिअ-मुहं महाकायं।
नह-कुलिस-घाय-विअलिअ-गइंद-कुंभत्थलाभोअं॥ 12॥
पणय-ससंभम-पत्थिव-नह-मणि-माणिक्क-पडिअ-पडिमस्स।
तुह वयण-पहरण-धरा सीहं कुद्धंपि न गणंति॥ 13॥

(**पणय-ससंभम-पत्थिव-नह-मणि-माणिक्क-पडिअ-पडिमस्स**) जिनके नखरूपी मणि-माणिक्यों पर विनत एवं संभ्रम अर्थात् आदर युक्त भय पूर्वक राजाओं के शरीर साष्टाङ्ग पतित हैं, ऐसे (**तुह**) आपके (**वयण-पहरण-धरा**) वचनरूपी आयुध के धारक मनुष्य (**पज्जलिआणल-नयणं**) प्रज्वलित अग्नि-तुल्य नेत्रों वाले, (**महाकायं**) विशाल-काय, (**नह-कुलिस-घाय-विअलिअ-गइंद-कुंभत्थलाभोअं**) नखरूपी वज्र के प्रहार द्वारा गजराज के कुम्भस्थलरूपी मैदान का विभाजन करने वाले एवं (**कुद्धंपि**) क्रोध को भी प्राप्त हुए (**सीहं**) सिंह को (**न**) नहीं (**गणंति**) गिनते !

(पद्यानुवाद)

नैन धधकते अंगारों से, मुख-विकराल, शरीर बड़ा,
वज्रघात-सम नख-प्रहार से, गज-मस्तक जो फाड़ खड़ा।
कुपित-सिंह वह नगण्य लगता, उन्हें जिन्हें श्री जिनवाणी,
मिली प्रभो ! जिन-नख-मणियों में, नत-मस्तक राजा ज्ञानी।

(मूल)

रोग-जल-जलण-विसहर-चोरारि-मइंद-गय-रण-भयाइं।
पास-जिण-नाम-संकित्तणेण पसमंति सव्वाइं ॥18॥

(सव्वाइं रोग-जल-जलण-विसहर-चोरारि-मइंद-गय-रण-भयाइं) रोग, जल, अग्नि, सर्प, चोर-शत्रु, सिंह, हाथी और रण-संबन्धी सभी भय **(पास-जिण-नाम-संकित्तणेण)** पार्श्व-जिन के नाम-संकीर्तन द्वारा **(पसमंति)** शान्त हो जाते हैं।

(पद्यानुवाद)

सर्व-व्याधियाँ, जल-यात्रा-भय, अग्नि-सर्प संकट भारी,
चोरों का भय, वैरी का भय, सिंह-हस्ति-भय, रण-मारी।
पार्श्व-नाम के संकीर्तन से, संकट सभी शांत होते,
नहीं भक्त सिर पकड़-पकड़ कर, विपदा आने पर रोते।

(मूल)

एवं महाभय-हरं पास-जिणिंदस्स संथवमुआरं।
भविअ-जणाणंदयरं कल्लाण-परंपर-निहाणं ॥ 19 ॥
राय-भय-जक्ख-रक्खस-कुसुमिण-दुस्सउण-रिक्ख-पीडासु।
संझासु दोसु पंथे उवसग्गे तह य रयणीसु ॥ 20 ॥
जो पढइ जो अ निसुणइ ताणं कइणो य माणतुंगस्स।
पासो पावं पसमेउ सयल-भुवणच्चियाचलणो ॥ 21 ॥

(एवं) इसी प्रकार **(राय-भय-जक्ख-रक्खस-कुसुमिण-दुस्सउण-रिक्ख-पीडासु)** राज-भय, यक्ष-राक्षस, दुःस्वप्न, अपशकुन तथा नक्षत्र-संबन्धी पीड़ाओं के होने पर, **(पंथे)** यात्रादि के समय मार्ग में **(तह)** तथा **(उवसग्गे)** उपसर्ग आने पर **(जो)** जो **(पास-जिणिंदस्स)** पार्श्व-जिनेन्द्र के **(महाभय-हरं)** महा भयहारी, **(भविअ-जणाणंदयरं)** भव्य-जनों के लिये आनन्दकारी और **(कल्लाण-परंपर-निहाणं)** कल्याण-परम्परा के भंडार-स्वरूप **(उआरं-संथवं)** उत्तम स्तवन को **(दोसु-संझासु)** दोनों सन्ध्याओं में **(य)** और **(रयणीसु)** रात्रियों में **(पढइ)** पढ़ता है **(अ)** और **(जो निसुणइ)** जो सुनता है, **(ताणं)** उसका **(य)** और **(कइणो माणतुंगस्स)** कवि-मानतुङ्ग का **(पावं)** पाप, **(सयल-भुवणच्चियाचलणो)** सारे जगत् में पूजित आचरण वाले **(पासो)** भगवान् पार्श्वनाथ तीर्थंकर **(पसमेउ)** शांत करें।

(पद्यानुवाद)

इसी तरह यदि अष्ट-कष्ट-सम, शासक भी संकटमय हो,
यक्ष और राक्षस का भय हो, ग्रह-नक्षत्रों का भय हो।
बुरे स्वप्न, अपशकुन हुए हों, या उपसर्ग भयंकर हो,
यात्रा के भी समय मार्ग में, ऐसा कोई भी डर हो॥
तब संध्या या उषा-निशा को, पढ़े-सुने जो भयहारी,
पार्श्व-जिनेश्वर की उत्तम स्तुति, भव्यों को अति सुखकारी।
कल्याणों की परम्परा निधि, उनका सारा पाप हरें,
जग-पूजित-संयमधारी प्रभु, मानतुंग पर कृपा करें।

(मूल)

उवसग्गंते कमठासुरम्मि झाणाउ जो न संचलिओ।
सुर-नर-किन्नर-जुवईहिं संथुओ जयउ पास-जिणो ॥22॥

(कमठासुरम्मि उवसग्गंते) कमठासुर के उपसर्ग-पर्यन्त **(जो)** जो **(झाणाउ)** ध्यान से **(संचलिओ)** विचलित **(न)** नहीं हुए, ऐसे **(सुर-नर-किन्नर-जुवईहिं)** देव, मनुष्य और किन्नरियों द्वारा **(संथुओ)** वन्दित **(पास-जिणो)** पार्श्व-जिन **(जयउ)** जयवन्त हों।

(पद्यानुवाद 22)

कमठासुर ने सात दिनों तक, जब उपसर्ग किया भारी,
नहीं डिगे तब ध्यान-योग से, कठिन-तपस्या के धारी।
सुर-नर-किन्नारियों से वन्दित, पार्श्व-जिनेश्वर जगनामी,
हो नित जय-जयकार आपकी, हे उपसर्गजयी-स्वामी !

(मूल)

एअस्स मज्झयारे अट्ठारस-अक्खरेहि जो मंतो।
जो जाणइ सो झायइ परम-पयत्थं फुडं पासं ॥ 23 ॥

(एअस्स) इस स्तोत्र के **(मज्झयारे)** मध्य **(जो मंतो)** जो मंत्र **(अट्ठारस अक्खरेहि)** अठारह अक्षरों से निष्पन्न होता है, उसे **(जो जाणइ)** जो जानता है, **(सो)** वह मनुष्य **(परम-पयत्थं पासं)** परम-पदासीन पार्श्व-प्रभु का **(फुडं)** विशदरूप से **(झायइ)** पदस्थ-ध्यान करता है।

(पद्यानुवाद)

इसी स्तोत्र में अष्टादश शुभ, वर्णों से बनने वाला,
एक मंत्र है, जो पहचाने, वह जपता उसकी माला।
है पदस्थ यह ध्यान परम-पद-भूषित पार्श्व-जिनेश्वर का,
भक्त समय का छोड़ अपव्यय, जप जपता परमेश्वर का।

नमिऊण-स्तोत्रम्

(मूल)

पासह-समरण जो कुणइ संतुट्ठे हियएण।
अट्ठुत्तर-सय-वाहि-भय नासइ तस्स दूरेण [खणेण] ॥ 24 ॥

(जो) जो मनुष्य **(संतुट्ठे हियएण)** संतुष्ट-हृदय से अर्थात् प्रसन्नता-पूर्वक **(पासह-समरण)** पार्श्व-स्मरण **(कुणइ)** करता है, **(तस्स)** उसका **(अट्ठुत्तर-सय-वाहि-भय)** १०८ व्याधियों संबंधी भय **(दूरेण)** द्रुत गति से **[खणेण]** // क्षणमात्र में **(नासइ)** नष्ट हो जाता है।

(पद्यानुवाद)

मुदित-हृदय से जो करे, पार्श्व-स्मरण, स्तुति-पाठ।
क्षण में उसके व्याधि-भय, मिटे एक सौ आठ।

★★★★★

अर्थ सहयोगी

(1) स्व. श्रीमती शम्भाबाई पत्नी श्री निर्मल बड़कुल, घोड़ा नक्कास, भोपाल

(2) स्व. श्रीमती इंद्राणी धर्मपत्नी स्व.श्री बागमल पवैया, जवाहर चौक,भोपाल

(3) स्व. श्रीमती आशालता की पुण्य स्मृति में शांतीलाल जैन, सुधीर एवं सुकांत सोगानी

(4) कमल कुमार जैन (कारीवाले)

(5) संजीव जैन पुत्र श्री स्व. कैलाशचन्द्र जी जैन

(6) सत्येन्द्र जैन (अर्पित गारमेन्टस), ललवानी प्रेस रोड़, भोपाल

(7) श्रीमती तारा देवी पंत धर्म पत्नि स्व. श्री सिरेमल जी पंत
अजीत कुमार, अरविन्द कुमार जैन

(8) राजीव कठर्‌या, लखेरापुरा, भोपाल

(9) स्व. श्रीमती संतोष जैन की पुण्य स्मृति में- द्वारा अजय जैन,
आदित्य जैन, आदेश जैन, जैनको भोपाल

(10) आशीष कुमार जैन पिताश्री भरत जैन

(11) सतीषचन्द्र जैन, ठेकेदार, मैनपुरी

(12) डॉ. आशा जैन (जबलपुर)

(13) जय ट्रेडर्स (नीम वाले)

(14) संजय जैन, सत्येन्द्र जैन, पूजा सेल्स, ललवानी प्रेस रोड़, भोपाल

(15) मै. लाभमल सागरमल जैन

(16) महेन्द्रकुमार संदीपकुमार जैन (पिपरावाले), सिरेमिक प्लाजा, जैन नगर, भोपाल

(17) सुरेश चंद जैन संजय जैन, सुबोध जैन (मुंगावलीवाले)

(18) नेमीचन्द, प्रदीप कुमार, प्रभात, पवन गोयल, 50 लखेरापुरा, भोपाल

(19) श्री योगेश जैन (नरेन्द्र वन्दना)

(20) स्व. राजमल जी जैन (नरपत्या) की पुण्य स्मृति में श्री संजय, सुमेश, सुधीर, संदीप नरपत्या फर्म - मोतीलाल मिट्ठूलाल जैन, लोहा बाजार, भोपाल

(21) स्व. डॉ. भूषणचन्द जी जैन की पुण्य स्मृति में श्रीमती गुणमाला जैन एवं सूरज जैन, जैन ट्रेवल्स, छतरपुर

(3)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भक्तामर स्तोत्रः हिन्दी पद्य भावानुवाद

पद्यानुवादक- पू.क्षु. श्री ध्यानसागर जी महाराज

(तर्ज- कमलकुमार कृत भक्तामर 'भक्त अमर नत-मुकुट सुमणियों की')

भक्त-सुरों के नत मुकुटों की, मणि-किरणों का किया विकास,
अतिशय विस्तृत पाप-तिमिर का किया जिन्होंने पूर्ण विनाश।
युगारंभ में भव-सागर में डूब रहे जन के आधार,
श्री-जिन के उन श्री-चरणों में वंदन करके भली प्रकार ॥1॥

सकल-शास्त्र का मर्म समझ कर सुरपति हुए निपुण मतिमान्,
गुण-नायक के गुण-गायक हो, किया जिन्होंने प्रभु-गुण-गान।
त्रि-जग-मनोहर थीं वे स्तुतियाँ, थीं वे उत्तम भक्ति-प्रधान,
अब मैं भी करने वाला हूँ, उन्हीं प्रथम-जिन का गुण-गान ॥2॥

ओ सुर-पूजित-चरण-पीठ-धर प्रभुवर ! मैं हूँ बुद्धि-विहीन,
स्तुति करने चल पड़ा आपकी हूँ निर्लज्ज न तनिक प्रवीण।
जल में प्रतिबिम्बित चन्दा को बालक सचमुच चन्दा जान,
सहसा हाथ बढ़ाता आगे, ना दूजा कोई मतिमान् ॥3॥

हे गुणसागर! शशि-सम सुन्दर तव शुचि गुण-गण का गुण-गान,
कोई कर न सके चाहे वह सुर-गुरु सा भी हो मतिमान्।
प्रलय-पवन से जहाँ कुपित हो घड़ियालों का झुंड महान्,
उस सागर को कैसे कोई भुज-बल से तैरे बलवान् ॥4॥

तो भी स्वामी ! वह मैं हूँ जो तव स्तुति करने को तैयार,
मुझ में कोई शक्ति नहीं पर भक्ति-भाव का है संचार।
निज-बल को जाँचे बिन हिरणी निज शिशु की रक्षा के काज,
प्रबल स्नेह-वश डट जाती है आगे चाहे हो मृगराज ॥5॥

मन्द-बुद्धि हूँ, विद्वानों का हास्य-पात्र भी हूँ मैं नाथ !
तो भी केवल भक्ति आपकी मुखर कर रही मुझे बलात्।
ऋतु वसंत में कोकिल कूके मधुर-मधुर होती आवाज,
आम्र वृक्ष पर बौरों के प्रिय गुच्छों में है उसका राज ॥6॥

निशा-काल का अलि-सम काला जग में फैला तिमिर महान्,
प्रातः ज्यों रवि किरणों द्वारा शीघ्रतया करता प्रस्थान।
जन्म-शृंखला से जीवों ने बाँधा है जो भीषण पाप,
क्षण भर में तव उत्तम स्तुति से कट जाता वह अपने आप ॥7॥

इसीलिये मैं मन्द-बुद्धि भी करूँ नाथ ! तव स्तुति प्रारंभ,
तव प्रभाव से चित्त हरेगी सत्पुरुषों का यह अविलंब।
है इसमें संदेह न कोई पत्र कमलिनी पर जिस भाँति,
संगति पाकर आ जाती है जल-कण में मोती सी कान्ति ॥8॥

दूर रहे स्तुति प्रभो ! आपकी दोष-रहित गुण की भण्डार,
तीनों जग के पापों का तव चर्चा से हो बंटाढार।
दूर रहा दिनकर, पर उसकी अति बलशाली प्रभा विशाल,
विकसित कर देती कमलों को सरोवरों में प्रातःकाल ॥9॥

तीनों भुवनों के हे भूषण ! और सभी जीवों के नाथ !!
है न अधिक अचरज इसमें जो सत्य-गुणों का लेकर साथ।
तव स्तुति गाता जिनपद पाता इसी धरा पर अपने आप,
जो न कर सके शरणागत को निज-समान उससे क्या लाभ? ॥10॥

अपलक दर्शन-योग्य आपके, दर्शन पा दर्शक के नैन,
हो जाते सन्तुष्ट पूर्णतः, अन्य कहीं पाते ना चैन।
चन्द्र-किरण सा धवल मनोहर, क्षीर-सिन्धु का कर जल-पान
खारे सागर के पानी का स्वाद कौन चाहे मतिमान् ? ॥11॥

हे त्रि-भुवन के अतुल शिरोमणि! अतुल-शान्ति की कान्ति-प्रधान,
जिन अणुओं ने रचा आपको, सारे जग में शोभावान।

वे अणु भी बस उतने ही थे, तनिक अधिक ना था परिमाण,
क्योंकि धरा पर, रूप दूसरा, है न कहीं भी आप समान ।।12।।

सुर-नर-नाग-कुमारों की भी आँखों को तव मुख से प्रीत,
जिसने जग की सारी सुन्दर-सुन्दर उपमाएँ ली हैं जीत।
और कहाँ चन्दा बेचारा जो नित धारण करे कलंक ?
दिन में ढाक-पत्र सा निष्प्रभ, होकर लगता पूरा रंक ।।13।।

पूर्ण-चन्द्र के कला-वृन्द सम धवल आपके गुण सब ओर,
व्याप्त हो रहे हैं इस जग में उनके यश का कहीं न छोर।
ठीक बात है जो त्रि-भुवन के स्वामी के स्वामी के दास,
मुक्त विचरते उन्हें रोकने कौन साहसी आता पास ?।।14।।

यदि सुरांगनाएँ तव मन में नहीं ला सकीं तनिक विकार,
तो इसमें अचरज कैसा? प्रभु ! स्वयं उन्हीं ने मानी हार।
गिरि को कंपित करने वाला प्रलयकाल का झंझावात,
कभी डिगा पाया क्या अब तक मेरु-शिखर को जग-विख्यात?।।15।।

प्रभो ! आपमें धुँआ न बत्ती और तेल का भी न पूर,
तो भी इस सारे त्रि-भुवन को आभा से करते भरपूर।
बुझा न सकती विकट हवाएँ जिनसे गिरि भी जाते काँप,
अतः जिनेश्वर ! जगत-प्रकाशक अद्वितीय दीपक हैं आप ।।16।।

अस्त आपका कभी न होता राहु बना सकता ना ग्रास,
एक साथ सहसा त्रि-भुवन में बिखरा देते आप प्रकाश।
छिपे न बादल के भीतर भी हे मुनीन्द्र ! तव महाप्रताप,
अतः जगत में रवि से बढ़ कर महिमा के धारी हैं आप ।।17।।

रहता है जो उदित हमेशा मोह-तिमिर को करता नष्ट,
जो न राहु के मुख में जाता बादल देते जिसे न कष्ट।
तेजस्वी-मुख-कमल आपका एक अनोखे चन्द्र समान,
करता हुआ प्रकाशित जग को शोभा पाता प्रभो ! महान ।।18।।

विभो! आपके मुख-शशि से जब, अन्धकार का रहा न नाम,
दिन में दिनकर, निशि में शशि का, फिर इस जग में है क्या काम ?।।
शालि-धान्य की पकी फसल से, शोभित धरती पर अभिराम,
जल-पूरित भारी मेघों का, रह जाता फिर कितना काम?।।19।।

ज्यों तुममें प्रभु शोभा पाता ! जगत-प्रकाशक केवलज्ञान,
त्यों हरि-हर-आदिक प्रभुओं में, होता ज्ञान न आप समान।
ज्यों झिलमिल मणियों में पाता तेज स्वयं ही सहज निखार,
काँच-खंड में आ न सके वह हो रवि-किरणों का संचार ।।20।।

हरि-हरादि को ही मैं सचमुच, उत्तम समझ रहा जिनराज !
जिन्हें देख कर हृदय आपमें, आनन्दित होता है आज।
नाथ ! आपके दर्शन से क्या ? जिसको पा लेने के बाद,
अगले भव में भी ना कोई मन भाता ना आता याद ।।21।।

जनती हैं शत-शत माताएँ शत-शत बार पुत्र गुणवान्,
पर तुम जैसे सुत की माता हुई न जग में अन्य महान्।
सर्व दिशाएँ धरे सर्वदा ग्रह-तारा-नक्षत्र अनेक,
पर प्रकाश के पुंज सूर्य को पूर्व दिशा ही जनती एक ।।22।।

सभी मुनीश्वर यही मानते, परम-पुरुष हैं आप महान्,
और तिमिर के सन्मुख स्वामी ! हैं उज्ज्वल आदित्य-समान।
एक आपको सम्यक् पाकर मृत्युंजय बनते वे संत,
नहीं दूसरा है कोई भी मोक्षपुरी का मंगल पंथ ।।23।।

अव्यय, विभु, अचिन्त्य, संख्या से परे, आद्य-अरहंत महान्,
जग ब्रह्मा, ईश्वर, अनंत-गुण, मदन-विनाशक अग्नि-समान।
योगीश्वर, विख्यात-ध्यानधर, जिन ! अनेक हो कर भी एक,
ज्ञान-स्वरूपी और अमल भी तुम्हें संत-जन कहते नेक ।।24।।

तुम्हीं बुद्ध हो क्योंकि सुरों से, पूजित है तव केवलज्ञान,
तुम्हीं महेश्वर शंकर जग को, करते हो आनन्द प्रदान।

तुम्हीं धीर ! हो ब्रह्मा आतम-हित की विधि का किया विधान,
तुम्हीं प्रगट पुरुषोत्तम भी हो हे भगवन् ! अतिशय गुणवान ॥25॥

दुखहर्ता हे नाथ ! त्रि-जग के, नमन आपको करूँ सदैव,
वसुन्धरा के उज्जवल भूषण नमन आपको करूँ सदैव।
तीनों भुवनों के परमेश्वर, नमन आपको करूँ सदैव,
भव-सागर के शोषक हे जिन ! नमन आपको करूँ सदैव ॥26॥

इसमें क्या आश्चर्य मुनीश्वर ! मिला न जब कोई आवास,
तब पाकर तव शरण सभी गुण, बने आपके सच्चे दास।
अपने-अपने विविध घरों में रहने का था जिन्हें घमंड,
कभी स्वप्न में भी तव दर्शन कर न सके वे दोष प्रचंड ॥27॥

ऊँचे तरु अशोक के नीचे नाथ विराजे आभावान,
रूप आपका सबको भाता निर्विकार शोभा की खान।
ज्यों बादल के निकट सुहाता बिम्ब सूर्य का तेजोधाम,
प्रकट बिखरती किरणों वाला विस्तृत-तन-नाशक अभिराम ॥28॥

मणि-किरणों से रंग-बिरंगे सिंहासन पर निःसंदेह,
अपनी दिव्य छटा बिखराती तव कंचन-सम पीली देह।
नभ में फैल रहा है जिसकी किरण-लताओं का विस्तार,
ऐसा रवि ही मानो प्रातः उदयाचल पर हो अविकार ॥29॥

कुन्द-सुमन-सम धवल सुचंचल चौंसठ चँवरों से अभिराम,
कंचन जैसा तव सुन्दर तन बहुत सुहाता है गुणधाम।
चन्दा-सम उज्ज्वल झरनों की बहती धाराओं से युक्त,
मानों सुर-गिरि का कंचनमय ऊँचा तट हो दूषण-मुक्त ॥30॥

दिव्य मोतियों के गुच्छों की रचना से अति शोभावान,
रवि-किरणों का घाम रोकता लगता शशि जैसा मनभान।
आप तीन जगत के प्रभुवर हैं, ऐसा जो करता विख्यात,
छत्र-त्रय-तव ऊपर रहकर शोभित होता है दिन-रात ॥31॥

गूँज उठा है दिशा-भाग पा जिसकी ऊँची ध्वनि गंभीर,
जग में सबको हो सत्संगम इसमें जो पटु और अधीर।
कालजयी का जय-घोषक बन नभ में बजता दुन्दुभि-वाद्य,
यशोगान नित करे आपका जय-जय-जय तीर्थंकर आद्य ॥32॥

पारिजात, मन्दार, नमेरू, सन्तानक हैं सुन्दर फूल,
जिनकी वर्षा नभ से होती, उत्तम, दिव्य तथा अनुकूल।
सुरभित जल-कण, पवन सहित शुभ, होता जिसका मंद प्रपात,
मानों तव वचनाली बरसे, सुमनाली बन कर जिन-नाथ! ॥33॥

विभो ! आपके जगमग-जगमग भामंडल की प्रभा विशाल,
त्रि-भुवन में सबकी आभा को लज्जित करती हुई त्रिकाल।
उज्ज्वलता में अन्तराल बिन अगणित उगते सूर्य-समान,
तो भी शशि-सम शीतल होती, हरे निशा का नाम-निशान ॥34॥

स्वर्ग-लोक या मोक्ष-धाम के पथ के खोजी को जो इष्ट,
सच्चा धर्म-स्वरूप जगत को बतलाने में परम विशिष्ट।
प्रगट अर्थ-युत सब भाषामय परिवर्तन का लिये स्वभाव,
दिव्य आपकी वाणी खिरती समवसरण में महाप्रभाव ॥35॥

खिले हुए नव स्वर्ण-कमल-दल जैसी सुखद कान्ति के धाम,
नख से चारों ओर बिखरती किरण-शिखाओं से अभिराम।
ऐसे चरण जहाँ पड़ते तव, वहाँ कमल दो सौ पच्चीस,
स्वयं देव रचते जाते हैं और झुकाते अपना शीश ॥36॥

धर्म-देशना में तव वैभव इस प्रकार ज्यों हुआ अपार,
अन्य किसी के वैभव ने त्यों नहीं कहीं पाया विस्तार।
होती जैसी प्रखर प्रभा प्रभु ! रवि की करती तम का नाश,
जगमग-जगमग करने पर भी कहाँ ग्रहों में वही प्रकाश ? ॥37॥

मद झरने से मटमैले हैं हिलते-डुलते जिसके गाल,
फिर मँड़राते भौरों का स्वर सुन कर भड़का जो विकराल।

ऐरावत-सम ऊँचा पूरा आगे को बढ़ता गजराज,
नहीं डरा पाता उनको जो तव शरणागत हे जिनराज ! ॥38॥

लहु से लथपथ गिरते उज्ज्वल गज-मुक्ता गज मस्तक फाड़,
बिखरा दिये धरा पर जिसने अहो ! लगा कर एक दहाड़।
ऐसा सिंह न करता हमला होकर हमले को तैयार,
उस चपेट में आये नर पर, जिसे आपके पग आधार ॥39॥

प्रलय-काल की अग्नि सरीखी ज्वालाओं वाली विकराल,
उचट रही जो चिनगारी बन, काल सरीखी जिसकी चाल।
सबके भक्षण की इच्छुक सी आगे बढ़ती वन की आग,
मात्र आपके नाम-नीर से वह पूरी बुझती नीराग ! ॥40॥

कोकिल-कण्ठ सरीखा काला लाल-नेत्र वाला विकराल,
फना उठा कर गुस्से में जो चलता टेढ़ी-मेढ़ी चाल।
आगे बढ़ते उस विषधर को वह करता पैरों से पार,
अहो ! बेधड़क जिसके हिय, तव नाम-नाग-दमनी विषहार ॥41॥

जहाँ हिनहिनाहट घोड़ों की जहाँ रहे हाथी चिंघाड़,
मची हुई है भीषण ध्वनि जो कानों को दे सकती फाड़।
वह सशक्त रिपु-नृप की सेना तव गुण-कीर्तन से तत्काल,
विघटित होती जैसे रवि से विघटित होता तम विकराल ॥42॥

भालों से हत गजराजों के लहु की सरिता में अविलंब,
भीतर-बाहर होने वाले योद्धा ला देते हैं कंप।
उस रण में तव पद-पंकज का होता है जिनको आधार,
विजय-पताका फहराते वे, दुर्जय-रिपु का कर संहार ॥43॥

जहाँ भयानक घड़ियालों का झुंड कुपित है, जहाँ विशाल,
है पाठीन-मीन, भीतर फिर, भीषण बड़वानल विकराल।
ऐसे तूफानी सागर में लहरों पर जिनके जल-यान,
तव सुमिरन से भय तज कर वे, पाते अपना वांछित स्थान ॥44॥

हुआ जलोदर रोग भयंकर कमर झुकी दुख बढ़ा अपार,
दशा बनी दयनीय न आशा जीने की भी दिन दो-चार।
वे नर भी तव पद-पंकज की, धूलि -सुधा का पाकर योग,
हो जाते हैं कामदेव से रूपवान पूरे नीरोग ॥45॥

जकड़े हैं पूरे के पूरे, भारी साँकल से जो लोग,
बेड़ी से छिल गई पिण्डलियाँ, भीषण कष्ट रहे जो भोग।
सतत आपके नाम-मन्त्र का, सुमिरन करके वे तत्काल,
स्वयं छूट जाते बन्धन से, ना हो पाता बाँका बाल ॥46॥

पागल हाथी, सिंह, दवानल, नाग, युद्ध, सागर विकराल,
रोग जलोदर या बन्धन से प्रकट हुआ भय भी तत्काल।
स्वयं भाग जाता भय से उस भक्त-पुरुष का जो मतिमान्,
करता है इस स्तोत्र-पाठ से, हे प्रभुवर ! तव शुचि-गुण-गान ॥47॥

सूत्र बना गुण-वृन्द आपका, अक्षर रंग-बिरंगे फूल,
स्तुति-माला तैयार हुई यह भक्ति आपकी जिसका मूल।
मानतुंग जो मनुज इसे नित कंठ धरे उसको हे देव !
वरे नियम से जग में अतुलित मुक्ति रूप लक्ष्मी स्वयमेव ॥48॥

●

- *विषयों में रुचि जगाने के लिये धर्मोपदेश नहीं है बल्कि मोक्षमार्ग मे रुचि जगाने के लिये धर्मोपदेश है।*
- *धार्मिक कार्यों में प्रारंभ से लेकर अंतिम दशा तक जितनी भी क्रियाये होती है, वे सब संसार से छूटने के लिये ही हैं।*
- *अरिहन्त पूजा, भक्ति, दान आदि प्रशस्त चर्या है। इसके द्वारा पुण्य का संचय तो होता ही है, साथ-साथ क्रमशः यानि परम्परा से निर्वाण की प्राप्ति भी होती है।*
- *जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करना, शील का पालन करना उपवास करना तथा सत्पात्रों को दान देना ये चारों धर्म श्रावकों के लिये नित्य करने योग्य कहे गये हैं।*

मुनि श्री समता सागर